प्रतिश्रुत पीढ़ी

आठ प्रतिश्रुत कवियों
की चुनी हुई सौ कविताएं

मृत्युञ्जय उपाध्याय
निरंजन महावर
श्याम सुन्दर घोष
कुमारेन्द्र पारसनाथसिंह
जुगमन्दिर तायल
अजित पुष्कल
राजीव सक्सेना
रणजीत

सम्पादक

रणजीत

नवयुग ग्रन्थ कुटीर
बीकानेर

यह नहीं कि मैं अपने परिवेश की असंगतियों के प्रति अन्धा हूँ
या कि मैं उसकी विरूपताओं को देखना नहीं चाहता
नहीं, मैं उन्हें देखता हूँ
पर मैं सिर्फ उन्हें ही नहीं देखता
और न उनके गौरव-गायन में ही
अपनी कविताओं को लगाना चाहता हूँ
मैं उन विरूपताओं की लपटों के बीच
प्रह्लाद की तरह सिर उठाते हुए सौन्दर्य को भी देखता हूँ
और उस संगति को भी
जो इन असंगतियों की काई फाड़ कर झांक जाती है।
मैं अपने चारों ओर फैली हुई संक्रान्ति से नहीं,
उसके बीच से अपने नक्श उभारती हुई क्रान्ति से प्रतिश्रुत हूँ।
अस्तित्व की बेहूदगियों के रेगिस्तान का नहीं,
उसके नीचे बहती हुई सार्थकता की उस अन्त सलिला का कवि हूँ
जो पाताल-तोड़ कुएं के रूप में फूट पड़ना चाहती है।
मैं उसकी मुक्ति के लिये संकल्पित हूँ।

प्रतिश्रुत पीढ़ी · एक संदर्भ बोध

पिछले पन्द्रह वर्षों से हिन्दी की समसामयिक कविता को मोटे तौर पर 'नयी कविता' कहा जाता रहा है। पर उसे शिल्पगत नवीनता की दृष्टि से भले ही यह एक नाम दिया जा सकता हो, वस्तु और अप्रोच की दृष्टि से वह एक तरह की कविता नहीं है। ऐसी स्थिति में सिर्फ शिल्पगत नवीनता के आधार पर इस कविता को 'नयी कविता' कह कर अनेक विरोधी प्रवृत्तियों की कविता धाराओं को एक ही भानुमती के कुनबे में रखने से कोई लाभ नहीं। उल्टे उसे सही परिप्रेक्ष्य में समझने में बाधा ही पड़ती है।

बीभत्स और कुत्सित दृश्यों और बिम्बों से मिल कर बनती हैं। इस कविता के प्रतिनिधि उदाहरण हमें श्रीकान्त वर्मा, कमलेश वाजपेयी मुद्रा राक्षस, राजकमल चौधरी और दूधनाथ सिंह जैसे कवियों की कविताओं में मिलते हैं। इस धारा में वे सभी समसामयिक कवि आ जाते हैं जो अपने आपको 'पिटे हुए' 'भूख' 'सनरात' या 'अयथावादी' कहते हैं। अमेरिका की बीट पीढ़ी और बंगला की भूखी पीढ़ी इनकी प्रेरणा के स्रोत हैं। ये वे कवि हैं जिन्हें जीवन और जगत का कोई दृश्य अपने वास्तविक रंग में नहीं दिखाई देता। कदम कदम पर इनके शब्दों और बिम्बों में मौत के सन्त्रास और विक्षेप की दुर्गन्ध आती है। हर कविता इन्हें 'और भी अधिक नंगा' कर जाती। कविता इन लोगों के लिए सृजन नहीं उत्सर्जन है वह आड है जिसमें बैठ कर ये लोग अपने मन की गन्दगी और दिमाग का विक्षेप निकालते हैं। आकाश के तारे इन्हें फुंसियों की तरह दिखाई देते हैं और किसी की याद इन्हें इस तरह आती है जैसे 'कोई बच्चा खौलते हुए जल में टूट कर गिर जाय'। मुहब्बत इन्हें 'गिरे हुए गर्भ के बच्चे' सी और चाहत 'किसी मरीज के खास कर भी न थूक सकने की मजबूरी' सी लगती है।

इस बीमार कविता के भी दो प्रमुख 'आयाम' हैं एक वह जिसमें मृत्यु-बोध और उसके सन्त्रास की अभिव्यक्ति मिली है, जिसमें रोग, पीप और मवाद के बिम्ब अधिक हैं और दूसरा वह जिसमें यौन कुठाएं और विकृतियां एक ऐसे बीभत्स और कुत्सित रूप में अभिव्यक्त हुई हैं, कि उसके सामने वह सब साहित्य जो साधारणतया अश्लील कहा जाता है, पवित्र और मूल्यवान लगने लगता है। 'नये कवि' की जगह इन 'कविताओं' के रचयिताओं को 'नंगा कवि' कहा जाय तो शायद वस्तु स्थिति की अधिक सही अभिव्यक्ति होगी। यह कविता शब्द के पूरे अर्थ में 'कुत्सित कविता' है।

यहां एक बात स्पष्ट कर लेनी चाहिए। बीमार कविता के इन कवियों की भी कुछ कविताओं को, जिनके बिम्ब यद्यपि रुग्ण और निराश मन के बिम्ब हैं तथापि जो अपने परिवेश की विद्रूपता और बीभत्सता का

हीनता की भावना से आक्रान्त होकर, अपनी हार मान लेता है।

'नयी कविता' का तीसरा और चौथा वर्ग—बीमार कविता और अकविता—कई बार एक दूसरे के काफी नजदीक आ जाते हैं। वास्तव में ये दोनों धाराएं चालीसी की उस काव्यधारा की ही नयी परिणतियां हैं जिसे प्रयोगवाद कहा गया था। एक में उसकी अहं-केन्द्रीयता, कुंठा-पराजय वाद का नया 'विकास' हुआ है और दूसरी में उसकी शिल्पवादिता का, उसकी 'चौंकाऊ वृत्ति' का।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 'आधुनिकता' और 'नयेपन' पर एकाधिकार का दावा भी सबसे ज्यादा जोर-शोर से इन्हीं दोनों धाराओं के कवि और उनके समर्थक कर रहे हैं।

और इनकी यह आधुनिकता है क्या ?

मोटे तौर पर जिसे ये लोग 'आधुनिक भावबोध' कहते हैं उसके कुछ प्रमुख आयाम हैं विरूपता में रूप देखना, निरर्थक अमूर्तता में रस लेना, जीवन की हर महत्वपूर्ण और पवित्र चीज को कीचड़ में लपेटना और हर ओछी और क्षुद्र चीज को गौरवान्वित करना, स्वस्थ, स्वच्छ, सार्थक और जीवित की जगह बीमार, बीभत्स, अर्थहीन, मृत और मरणोन्मुख में सौन्दर्य देखना, सबको एक दूसरे के लिए अजनबी समझना, हर समय मृत्यु के आतंक से त्रस्त रहना, और अपने सिवा अन्य सभी लोगों के अस्तित्व को सहने का अभिशाप भोगना, या ऐसा सब होने का अभिनय करना। अभिनय करने की बात मैं इसलिये कह रहा हूं कि अगर 'आधुनिक भाव-बोध' के ये सब चिह्न वास्तव में किसी व्यक्ति में हों, तो उसे मानसिक चिकित्सालय के सिवा कहीं भी नहीं भेजना चाहिए और चूंकि हमारे अधिकांश 'आधुनिकतावादियों' को वहां रखने की जरूरत महसूस नहीं की जाती (हां कुछ को कभी कभी अवश्य होती है), इसलिए यही कहना होगा कि आधुनिक भाव-बोध के अधिकांश आयाम उन्होंने ओढ़े हुए हैं—पश्चिमी पत्र-पत्रिकाएं पढ़-पढ़ कर अर्जित किए हैं।

उद्घाटन और उस पर प्रहार करती हैं 'बीमार कविता' की संज्ञा से अलग करना होगा। इसी प्रकार वीभत्स और विरूप बिम्ब कई स्वस्थ दृष्टिकोण के कवियों की प्रभावशाली कविताओं में भी मिलते हैं। इसलिए किसी कविता को बीमार कविता बनाने वाली मूल बात केवल रुग्ण बिम्ब विधान नहीं उस विधान के पीछे कवि की दृष्टि, उस विधान का उद्देश्य है। केवल सतह की अस्वस्थता के कारण किसी कविता को बीमार कविता' की संज्ञा देना अनुचित होगा।

नयी कविता' का चौथा रूप वह है जिसे छदमुक्त कविता की तुक मे 'अर्थमुक्त कविता' कहा जा सकता है। यह ऐसी 'कविता' है जिसे स्वस्थ या बीमार कहने से कोई लाभ नहीं, क्योंकि वह कविता ही नहीं है। दाद देनी पड़ेगी इसके कुछ साहसी संदेशवाहकों को कि व स्वय अब इसे 'अकविता' कहने लगे हैं (यद्यपि अपने आपको 'अकवि' कहने वाले सभी लोग हमेशा अकविता ही लिखत हों सो बात नहीं वक्त जरूरत वे अच्छी खासी कविताए भी लिख लेते हैं)। मैं इसे उलजुलूल कविता कहना पसन्द करता हूँ। यह वह कविता है जो शब्दों का सार्थक प्रयोग नहीं करती, उनसे खेलती है। या फिर उनको ईंट-पत्थरों की तरह अपन पाठकों क सिर पर द मारती ह। वस्तुहीन शिल्प ही इसके लिए सब कुछ है इसलिए इसे शिल्पवादी भी कहा जा सकता है। इस शिल्पवादी अकविता क कुछ 'अच्छे' उदाहरण शमशेर की कई कविताओं मे मिल जात हैं। नकन क प्रपद्य' इस धारा क कुछ प्रतिनिधि उदाहरणों का 'सुन्दर' सकलन है। पुराने प्रयोगवादियों में प्रभाकर माचवे और लक्ष्मीकान्त वर्मा म यह प्रवृत्ति काफी प्रबल है। एकदम समसामयिक सृजन मे विकृत रुचि लोगों का एक पूरा समूह अकविता का अभ्यास कर रहा है। पर इस अकविता क 'सवश्रेष्ठ' कवि व हैं जो अपनी अर्थहीनता क बावजूद साधारण पाठकों को आतंकित कर सकन मे सफल हान हैं व जिनकी कविताए पढ़त हुए पाठक को लगता है कि इसमें कोई ऐसा अर्थ है जो उसकी साधारण बुद्धि की पकड़ म नहीं आ रहा है। और वह उस 'गहन अर्थ' म आतंकित और एक झूठी आत्म

हीनता की भावना से आक्रान्त होकर, अपनी हार मान लेता है।

'नयी कविता' का तीसरा और चौथा वर्ग—बीमार कविता और अकविता—कई बार एक दूसरे के काफी नजदीक आ जाते हैं। वास्तव में ये दोनों धाराएं चालीसी की उस काव्यधारा की ही नयी परिणतियां हैं जिसे प्रयोगवाद कहा गया था। एक में उसकी अह-से द्रीयता, कुंठा-पराजय वाद का नया 'विकास' हुआ है और दूसरी में उसकी शिल्पवादिता का, उसकी 'चौंकाव वृत्ति' का।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 'आधुनिकता' और 'नयेपन' पर एकाधिकार का दावा भी सबसे ज्यादा जोर-शोर से इन्हीं दोनों धाराओं के कवि और उनके समर्थक कर रहे हैं।

और इनकी यह आधुनिकता है क्या ?

मोटे तौर पर जिसे ये लोग 'आधुनिक भावबोध' कहते हैं उसके कुछ प्रमुख आयाम हैं विरूपता में रूप देखना, निरर्थक अमूर्तता में रस लेना, जीवन की हर महत्वपूर्ण और पवित्र चीज को कीचड़ में लपेटना और हर ओछी और क्षुद्र चीज को गौरवान्वित करना, स्वस्थ, स्वच्छ, सार्थक और जीवित की जगह बीमार, बीभत्स, अर्थहीन, मृत और मरणोन्मुख में सौंदर्य देखना, सबको एक दूसरे के लिए अजनबी समझना हर समय मृत्यु के आतंक से त्रस्त रहना, और अपने सिवा अन्य सभी लोगों के अस्तित्व को सहने का अभिशाप भोगना, या ऐसा सब होने का अभिनय करना। अभिनय करने की बात मैं इसलिये कह रहा हूं कि अगर 'आधुनिक भाव-बोध' के ये सब चिन्ह वास्तव में किसी व्यक्ति में हों, तो उसे मानसिक चिकित्सालय के सिवा कहीं भी नहीं भेजना चाहिए और चूंकि हमारे अधिकांश 'आधुनिकतावादियों' को वहां रखने की जरूरत महसूस नहीं की जाती (हां कुछ की कभी कभी अवश्य होती है), इसलिए यही कहना होगा कि आधुनिक भाव-बोध के अधिकांश आयाम उन्होंने ओढ़े हुए हैं—पश्चिमी पत्र-पत्रिकाएं पढ़-पढ़ कर 'अर्जित' किये हैं।

मलार्मे ने एक जगह लिखा है "अपाहिजत्व की देवी, ओ आधुनिक कल्पने ! तुझे मैं अपने जीवन की ये थोडी सी पंक्तियां समर्पित करता हूँ, जो तेरी कृपा के उन क्षणों मे लिखी गयी हैं, जब तूने मेरे भीतर ससार के प्रति नफरत और नितात 'न कुछ' के प्रति बजर प्रेम का स्फुरण नहीं किया।" लेकिन हमारे इन 'आधुनिकतावादियो' की ट्रेजेडी यह है कि वे मलार्मे की तरह उन क्षणों मे नहीं लिखते जब अपाहिजत्व की यह देवी कृपा कर के अपना साया उन पर से हटा लेती है, बल्कि उन क्षणों में ही लिखते हैं जब वह उनके दिलो मे ससार के प्रति नफरत और 'न-कुछ' के प्रति एक बजर प्रेम का स्फुरण कर देती है।

लेविस ने जो स्वय एक आधुनिकतावादी कवि और आलोचक के रूप मे प्रसिद्ध है आधुनिक समाज मे ऐसे कवियो की स्थिति को बडी विम्बात्मक शब्दावली मे व्यक्त किया है "वह आधुनिक दुनिया मे केवल उस देहाती मूर्ख की तरह ही जीवित रह सकता है जिसे उपेक्षा पूर्वक सहन कर लिया जाता है और जो अपने दिमाग मे चक्कर काटते हुए टूटे फूटे बिम्बों को लिये, अपने आपसे बडबडाता हुआ सराय और पट्रोल पम्प के आस-पास भटकता हुआ, एक ऐसे जीवन की नकलें उतारता रहता है, जिसमे उसका स्वय का कोई हिस्सा नही है।" आधुनिकता के नाम पर समसामयिक कला में आए हुए ऐसे रुग्णतावादी आन्दोलनों को पूरी पश्चिमी सस्कृति के अध-पतन का ही एक प्रमाण सिद्ध करते हुए प्रसिद्ध समाजशास्त्री ओस्वाल्ड स्पगलर ने भी इन आधुनिकतावादी कलाकारों को 'उद्यमी धेगलीबाज' (इडस्ट्रियस फाल्पस) और 'शोर करने वाले मूर्ख' कहा।

और इस अपाहिज आधुनिकता की परिणति क्या होती है ? या तो लोग मलार्मे की तरह लिखना ही छोड देते हैं। या अपने वास्तविक या ओढ़े हुए विशेप का वमन अपप बिम्बों और अथहीन शब्दों में करते रहते हैं और या फिर इस बेमतलब बेहूदगी से ऊब कर ईलियट, ओडेन और अर्जेस की तरह पाछे हट कर कथोलिक धम और 'असाध्य वीणा' की शरण ले लेते हैं। और उनका सारा 'उद्धत विद्रोह' मध्यकालीनता के चरणों पर समर्पित हो

इसी स्थिति को देखते हुए राजीव सक्सेना की यह बात समझ में आती है कि साहित्य में वास्तविक आधुनिकता अभी अपने जन्म की प्रतीक्षा में है, कि 'आधुनिक जीवन के प्रति घृणा' (मैं कहना चाहूंगा एक बजर घृणा) पर आधारित आधुनिक कला वास्तव मे आधुनिकता का छायाभास मात्र है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने कहीं कहा है कि वास्तविक आधुनिकता की तीन आधारभूत धारणाएं हैं इहलौकिकता, ऐतिहासिक चेतना और वयक्तिक मुक्ति की जगह सामूहिक मुक्ति की धारणा। प्राचीनता और मध्यकालीनता इस लोक को कम महत्व देती थीं, ससार को एक विकास की परम्परा में से गुजरते हुए नहीं, कभी एक ह्रास-परपरा म से गुजरते हुए और कभी एक नियत वृत्त मे चक्कर लगाते हुए कल्पित करती थीं और सामाजिक सुख और स्वाधीनता की जगह वयक्तिक मोक्ष या निर्वाण को अधिक महत्व देती थीं। बात काफी पते की है। निश्चय ही ये तीन तत्व वास्तविक आधुनिकता के मूलाधार हैं। मैं ऐतिहासिक चेतना के साथ एक बात और जोडना चाहता हू—वज्ञानिक दृष्टि। यद्यपि ऐतिहासिक चेतना भी वज्ञानिक दृष्टि का ही परिणाम है, पर वज्ञानिक दृष्टि ऐतिहासिक चेतना या प्रगति की धारणा तक ही सीमित नहीं है। उस के और भी कई आयाम हैं जसे यथार्थवादिता। इसी तरह इहलौकिकता के साथ भी एक और बात जोडी जा सकती है युग सम्पृक्ति : अपने युग को भेलना। उसके बिना इहलौकिकता पगु है। और 'सामूहिक मुक्ति की धारणा' की जगह मैं कहना चाहूंगा व्यक्तित्व का सम्मान करने वाली सामाजिकता। इस तरह आधुनिकता के मूलभूत तत्व हुए इहलौकिकता और युग-सम्पृक्ति, वज्ञानिक दृष्टि और ऐतिहासिक चेतना तथा व्यक्तित्व का सम्मान करने वाली सामाजिकता। मेरे खयाल से यही एक कसौटी है, जिस पर असली और नकली आधुनिकता को पहिचाना जा सकता है।

इस दृष्टि से देखा जाय तो 'नयी कविता' को इन चार धाराओं

मे सबसे महत्वपूर्ण और वास्तव मे आधुनिक कविता है नयी प्रगतिशील कविता। यद्यपि यह 'नयी कविता' का वह जीवन्त अंग है जिसके कारण सब बाह्य विरोधो और अपनी सब आन्तरिक दुर्बलताओं के बावजूद न केवल नयी कविता अस्तित्व मे रही बल्कि दृढ़तापूर्वक स्थापित भी हुई है, तथापि इस धारा के कवियो को दुहरी उपेक्षा का सामना करना पडता रहा है। एक ओर तो प्रगतिवादी आलोचको ने कभी कभार उनकी स्वस्थता को स्वीकृति देकर भी उन पर अधिक ध्यान इसलिए नही दिया कि वे 'नयी कविता' के अन्तर्गत आते थे और दूसरी ओर प्रयोगवादी और तथाकथित 'नये' आलोचको ने उनकी स्वस्थता और सामाजिकता के कारण ही उनकी उपेक्षा की। यही कारण है कि समसामयिक हिन्दी कविता की इस सर्वाधिक जीवन्त प्रवृत्ति का सम्यक विवेचन और मूल्यांकन नहीं हो सका।

'नयी प्रगतिशील कविता' मोटे तौर पर नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन और उपेन्द्रनाथ अश्क जैसे पुराने प्रगतिशील कवियों की परवर्ती प्रगतिशील कविताओं के अतिरिक्त नरेश मेहता, गिरिजाकुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, भवानीप्रसाद मिश्र, शमशेर, भारत भूषण अग्रवाल वीरेन्द्र कुमार जैन, दुष्यन्त कुमार और केदारनाथसिंह जैसे कवियों और वीरेन्द्र मिश्र जैसे गीतकारों की उन कविताओं का सग्रह है जो एक ओर तो नये सौन्दर्य-बोध और शिल्प चेतना के कारण नयी' है और दूसरी ओर दृष्टि की स्वस्थता और स्वभाव की सामाजिकता मानवीयता के कारण 'प्रगतिशील।

इस तरह से सोचा जाय तो जिस तार सप्तक' से प्रयोगवाद का और जिस दूसरे सप्तक से 'नयी कविता का प्रारम्भ माना जाता है उन दोनों सप्तकों के कवियों मे से लगभग दस नयी प्रगतिशील कविता के ही कवि थे यह अलग बात है कि इनमे से कई सप्तकों से बाहर कवि रूप में जिन्दा नहीं रहे (और क्या वे उनमे भी जिन्दा थे ?) और कई बाद मे अध्यात्मवादी या नियतिवादी (जैसे नरेश मेहता और शमशेर) हो गये। यह एक आश्चर्य की ही बात है कि जिन सप्तकों के दो तिहाई कवियों ने

अपने वक्तव्यों में अपने आपको मार्क्सवादी तक घोषित किया, उन्हें केवल सम्पादक की भूमिकाओं के कारण प्रयोगवादी कविता के संकलन मान लिया गया। वास्तव में ये दोनों संकलन मोटे तौर पर नयी प्रगतिशील कविता के ही प्रारंभिक संकलन थे। आज की नवयुवक कवियों की एक पूरी की पूरी पीढ़ी इस काव्यधारा की समृद्धि में अपना योग दे रही है। 'आज की कविता', 'युयुत्सावाद', 'अनिश्रुत कविता' आदि सममामयिक काव्यांदोलनों के पीछे भी उसी सामाजिक चेतना का पुनरन्वेषण परिलक्षित होता है।

अब सवाल उठता है कि नयी प्रगतिशील कविता की ऐसी कौन सी विशेषताएं हैं जो एक ओर तो इसे पुरानी प्रगतिशील कविता से और दूसरी ओर शेष 'नयी कविता' से अलग करती हैं?

नयी प्रगतिशील कविता पुरानी प्रगतिशील कविता का ही नया विकास है इसलिए उसमें उस कविता के मूल तत्व विद्यमान हैं। इस कविता के पीछे भी वैज्ञानिक मानववादी जीवन दर्शन है। पर एक तो यह पुरानी प्रगतिशील कविता की तरह कविता को सिद्धान्त-कथन का माध्यम मात्र नहीं मानता और दूसरे यह मानववाद को किसी दृढ़ अपरिवर्तनशील सिद्धांत के रूप में नहीं, सोचने और समझने की एक वैज्ञानिक दृष्टि के रूप में स्वीकार करती है। यही कारण है कि नयी प्रगतिशील कविता का काम साम्यवादी देशों की सरकारों या अपने देश के साम्यवादी दलों की तात्कालिक नीतियों का तार्कीकरण या पाठ्यानुवाद नहीं है। उसकी प्रतिश्रुति मनुष्यता और जनता के प्रति है स्वस्थ, सामाजिक और प्रगतिशील मानव मूल्यों के प्रति है। किसी दल विशेष के प्रति नहीं। वह साम्यवाद में निहित मानववाद को रेखांकित करती है और इसलिए अन्य क्षेत्रों के मानववादी तत्वों को भी वह स्वीकृति और सम्मान देती है। लेकिन उसने प्रगतिशील कविता की क्रांतिकारी परम्परा को छोड़ा नहीं है, वह आज भी अन्याय और अत्याचार के खिलाफ उसी आक्रोश के साथ लड़ता है, शोषण और विषमता के विरुद्ध उसी कटुता के साथ संघर्षरत है।

यद्यपि नयी प्रगतिशील कविता भी अपने मूल रूप में सामाजिक कविता है तथापि उसकी सामाजिकता सपाट, सूत्रात्मक और यांत्रिक सामाजिकता नहीं है, बाहर से थोपी हुई सामाजिकता नहीं है। वह एक जटिल और जीवन्त सामाजिकता है। यही कारण है कि उसमें व्यक्तित्व के हनन की नहीं, उसके उचित और स्वस्थ विकास की स्थापना है। नरेश मेहता की एक कविता—अनुनय—से मैं अपनी बात की पुष्टि करूंगा

यहां वहां लोग ही लोग हैं
मैं कहां हूं ?
तुम्हारे परों के नीचे
मेरा नाम कहीं दब गया है
उठा लेने दो मेरे लिए वह मूल्य है!

'लोग' अर्थात् भीड़ *अविवेकपूर्ण, आक्रमक सामाजिकता।* 'नाम' यानी व्यक्तित्व, जो कि कवि के लिए महत्वपूर्ण है। पर इस का मतलब यह नहीं कि वह सामाजिकता को व्यक्तित्व की शत्रु के रूप में ही कल्पित करता है। नहीं। उसे लोगों की देहों से दुर्गन्ध नहीं आती। वह अपने नाम के अतिरिक्त परिश्रम की गंध को भी मूल्यवान समझता है। वह समाजद्रोही व्यक्तिवादी नहीं व्यक्तित्व की रक्षा चाहने वाला समाजवादी है

आओ
हम सब अपने अपने नाम खोज निकालें
भीड़ों की असावधानियों से जो कुचल गये हैं
क्योंकि वे मूल्य हैं
अपने को जानने के लिए
कि कब हम लोग होते हैं
और कब नहीं।

पर नयी प्रगतिशील कविता का यह व्यक्ति नयी कविता के व्यक्ति की तरह मनों का ढोर नहीं है

हम नहीं हैं द्वार जीवन की नग्न व

वरन् जीवन से भरे निमल सरोवर
भले मिट्टी में हुआ निर्माण
किन्तु मिट्टी है परिधि ही
नहीं है मिट्टी हमारे प्राण
इसीलिए वह धारा से अलग रहने को अपनी नियति नहीं मानता।
समवाय के अभियान में मिल
एक होने के लिए आकुल हमारे प्राण।

स्वस्थ सामाजिकता के साथ ही साथ स्वस्थ व्यक्तित्व को भी महत्व देने के कारण ही यह कविता व्यक्ति की समस्याओं और उसके सुख दुख की अभिव्यक्ति से कतराती नहीं है। व्यक्ति और समाज के बीच का द्वन्द्व भी (जो विषम सामाजिक परिस्थितियों या व्यक्ति की अनुचित महत्वाकांक्षाओं का ही परिणाम है) उसी तरह इसका विषय है, जिस तरह समष्टि के सामने व्यष्टि का समर्पण।

एक और दृष्टि से भी नई प्रगतिशील कविता पहले की प्रगतिशील कविता से अलग है। पहले की प्रगतिशील कविता में उत्साह, उद्बोधन और आक्रोश की ही अधिकता थी, या फिर यथार्थ चित्रण की। पर नयी प्रगतिशील कविता में एक ओर तो इनके अतिरिक्त एक अन्तर्मंथन का दबाव और तनाव भी मिलता है। सरल दुविधाहीनता और वैचारिक अक्खड़पन की जगह इसमें एक जटिल संकोच, एक अधिक अनुभवी विनम्रता है। वह यदि सलीब थामे हुए धर्मयोद्धाओं की शहादतों को वाणी देती है तो उनके दर्द को भी अभिव्यक्ति देती है, जो शहीद तो हो रहे हैं पर जिनके पास कोई सलीब नहीं है। उथले और यांत्रिक आशावाद की जगह कभी कभी इसमें एक गहरी और मानवीय निराशा भी मिलती है पर यह निराशा तथाकथित 'नयी कविता' की आस्थाहीनता और पराजय से अलग है क्योंकि यह एक मानवीय संस्पर्श से पवित्र होती है। और दूसरी ओर इसने यथार्थ के दरवाजे को भी नये और ऊंचे स्तरों तक पहुँचाया है यथार्थ के नये आयाम खोले हैं। मुक्तिबोध और गिरिजाकुमार माथुर की उपलब्धियाँ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। गिरिजा

यद्यपि नयी प्रगतिशील कविता भी अपने मूल रूप में सामाजिक कविता है तथापि उसकी सामाजिकता सपाट सूत्रात्मक और दोषित सामाजिकता नहीं है, बाहर से थोपी हुई सामाजिकता नहीं है। वह एक आन्तरिक और जीवन्त सामाजिकता है। यही कारण है कि उसमें व्यक्तित्व का हनन भी नहीं, उसके उचित और स्वस्थ विकास की स्थापना है। नरेश मेहता की एक कविता—अनुनय—से मैं अपनी बात की पुष्टि करूँगा

यहाँ वहाँ लोग ही लोग हैं
मैं कहाँ हूँ ?
तुम्हारे पैरों के नीचे
मेरा नाम कहीं दब गया है
उठा लेने दो मेरे लिए वह मूल्य है।

'लोग' अर्थात् भीड़ अविवेकपूर्ण आक्रमक सामाजिकता। 'नाम' यानी व्यक्तित्व, जो कि कवि के लिए महत्वपूर्ण है। पर इसका मतलब यह नहीं कि वह सामाजिकता को व्यक्तित्व की शत्रु के रूप में ही कल्पित करता है। नहीं। उसे लोगों की देहों से दुर्गन्ध नहीं आती। वह अपने नाम के अतिरिक्त परिश्रम की गंध को भी मूल्यवान समझता है। वह समाजद्रोही व्यक्तिवादी नहीं व्यक्तित्व की रक्षा चाहने वाला समाजवादी है

आओ
हम सब अपने अपने नाम खोज निकालें
भीड़ों की असावधानियों से जो कुचल गये हैं
क्योंकि वे मूल्य हैं
अपने को जानने के लिए
कि कब हम लोग होते हैं
और कब नहीं।

पर नयी प्रगतिशील कविता का यह व्यक्ति नयी कविता के व्यक्ति की तरह नदी का द्वीप नहीं है

हम नहीं हैं द्वीप जीवन की नदी के

परन् जीवन से भरे निर्मल सरोवर
भले मिट्टी से हुआ निर्माण
किन्तु मिट्टी है परिधि ही
नहीं है मिट्टी हमारे प्राण।

इसीलिए यह धारा से अलग रहने को अपनी नियति नहीं मानता

समवाय के अभियान में मिल
एक होने के लिए आकुल हमारे प्राण।

स्वस्थ सामाजिकता के साथ ही साथ स्वस्थ व्यक्तित्व को भी महत्व देने के कारण ही यह कविता व्यक्ति की समस्याओं और उसके सुख दुःख की अभिव्यक्ति से कतराती नहीं है। व्यक्ति और समाज के बीच का द्वन्द्व भी (जो विषम सामाजिक परिस्थितियों या व्यक्ति की अनुचित महत्वाकांक्षाओं का ही परिणाम है) उसी तरह इसका विषय है, जिस तरह समष्टि के सामने व्यष्टि का समर्पण।

एक और दृष्टि से भी नई प्रगतिशील कविता पहले की प्रगतिशील कविता से अलग है। पहले की प्रगतिशील कविता में उत्साह, उद्बोधन और आक्रोश की ही अधिकता थी, या फिर यथार्थ चित्रण की। पर नयी प्रगतिशील कविता में एक ओर तो इनके अतिरिक्त एक अन्तर्मन का कसाव और तनाव भी मिलता है। सरल दुविधाहीनता और वक्तारिक प्रगल्भपन की जगह उसमें एक जटिल संकोच, एक अधिक अनुभवी विनम्रता है। यह यदि सलीब थामे हुए धर्मयोद्धाओं की शहादतों को वाणी देती है तो उनके दर्द को भी अभिव्यक्ति देती है, जो शहीद तो हो रहे हैं पर जिनके पास कोई सलीब नहीं है। दूसरे ओर यांत्रिक आशावाद की जगह कभी कभी इसमें एक गहरी और मानवीय निराशा भी मिलती है, पर यह निराशा तथाकथित 'नयी कविता' की पराजयहीनता और पराजय से अलग है, क्योंकि वह एक मानवीय सरपन से पवित्र होती है। और दूसरी ओर इसने यथार्थ के ... को भी ऊंचे स्तरों तक पहुँचाया है यथार्थ के नये आयाम खोले हैं। मुक्तिबोध और गिरिजाकुमार माथुर की रचनायें इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। गिरिजा

क्रमशः

अनुक्रम

राजीव सक्सेना

रणजीत

मृत्युञ्जय उपाध्याय

व्यवस्था

रात
पेट पर रख हाथ
गिन रहा तारे
यह यशस्वी देश

सम्मुख खड़ी दर्पण के
व्यवस्था
बेशरम
सुलझा रही है केश।

मैं भी

घना जंगल   रास्ता दुर्गम   मशालें जल रही हैं

अँधेरा चीरते
सधे पाँवों,
मुट्ठियाँ ताने

बढ़ रहे लाखों-करोड़ों लोग
लम्बा युद्ध लड़ने को।

मैं भी
कलम का एक छोटा सा सिपाही
चल रहा हूँ साथ
दे रहा हूँ दस्तकें—हर द्वार पर

खून जो सोया हुआ
उसको जगाने को।

बेटा मेरा

पिता ने

पहाड़ो को काटा,
जंगल साफ़ किये
खेत जोते
मिलों का धुआँ पिया
मर गये

तिलमिलाया
मैं,
उतर आया आँखों में खून
उठायी कलम
लिखे
कुछ गीत कुछ कविताएं

सीना फुला
कहता है बेटा मेरा
'बाबू जी सीखी है मैंने बन्दूक
आप भी सीखेंगे ?''

मानवता

उतप्त   उजाड़   ऊँचा
        रेतीला टीला
बबूल की निपट नगी सूखी टहनियों पर
                        हाँफते
                        सफेद
                        सफेद
                        कबूतर

सहमा   छाती से चिपका
        दुधमुँहा शिशु
उजड़ी आंख   उलझे बाल
            अधनगी औरत
आकाश मे मँडराते—
            गिद्ध
            बस गिद्ध

चीख
    और फिर—
            होठो पर
                लोरी
                    पर   बस

शांति-वार्ता

पाँच चालीस पर—

मेज है मरतबान है चाय के प्याले हैं
राजनीतिज्ञ हैं बहुत सी फाइलें हैं
सड़क है संवाददाता हैं फोटोग्राफर हैं
लोग हैं विकसी हुई आँखें हैं

पाँच उनसठ पर—

न राजनीतिज्ञ हैं न फाइलें हैं
न संवाददाता हैं न फोटोग्राफर हैं
मेज है मरतबान है टूटे हुए प्याले हैं
सड़क है लोग हैं बुझी हुई आँखें हैं ।

प्रतिश्रुत पीढ़ी

नौकरी

इब्राहिम की दुकान से बीड़ी खरीदी नही
शिवपुजना के हाथ की गम चाय पी नही
उड़िया की दुकान का घुंडी पान खाया नही
शीशे में सूरत देख तनिक मुस्काया नही
बगल से गुजरती लछमनिया को देखा नही
चटकल की धनो को बिरहा सुनाया नहीं
हसन की बिटिया को गोद मे उठाया नही
उदास खड़े महगू को हँस के बुलाया नही
ढिबरी जलायी नहा चूल्हा सुलगाया नही
छूट गयी नौकरी, किसी को बताया नही

पापड़ सूख रहे हैं

बादलों पर आँखें टिकाये
उदास बैठी है
मेरी पड़ोसिन है।

दिन भर पापड़ बेलती है
बरामदे में लेटे बीमार बूढ़े से झगड़ती है
कोख को कोसती है
बहू को गालियाँ देती है
सपने देखती है
आधी रात गये—

आसमान साफ है
सूरज चमक रहा है
पापड़ सूख रहे हैं।

कौन ?

सि दूर पर हजारो का नाम
होठ पर अठन्नी की चमक
गर्भ में अज्ञात पिता का अंश
फेफड़ो मे टी बी की गमक

—एक रुपया
—नही, दो रुपया

कौन ?

सीता ?

सावित्री ?

युग-स्थिति

अंधों की धरती
बहरों का आकाश
दोनो के बीच
गूंगों को नाश।

अरी ओ जिन्दगी

पसीना
प्यास
छाले

पकड़े रह हाथ
अरी ओ जिन्दगी।

तेरे जूड़े मे
गुलाब टांकूगा।

बहुत दिन हुए

सपने जोड़ते,
उगलियो पर दिन गिनते
घुटनो पर हाथ धर
हवाओ के स्वर सुनते
धुएँ में घुटते
इशारो से बोलत

बहुत दिन हुए दोस्तो ।
बहुत दिन हुए

मानो तो कहूं

तोड़ो यह चुप्पी
छोड़ो यह ढोल
अब तो पथ मोड़ो
बहुत दिन हुए
दोस्तो ।
बहुत दिन हुए

नदी याद की

हँसी हुई
पलट कर देखा
तुम नहीं
थी
नदी
याद की

घाटियों से
उम्र की
बहती हुई

तुम

पलाश की बेंच पर
खुदे दो नाम
पास
बहुत पास

पढ़कर
कुछ ने कही कहानी
कुछ को सूझा परिहास

चुप थी
सिर्फ एक तुम
यादों में डूबी
उदास
बहुत उदास

क्षमा-निवेदन

छू गई बांह ?
घूर घूर मत देखो
पता नहीं है
दर सल अकेले चलना नहीं आता।

आदत
लोगों को हँसते देख
हँसने की
रोते देख
रोने की

माफ करना
गलती हुई
हँस पड़ा तुम्हें भी हँसते देख।

दुख गया तुम्हारा मन
सुनकर मेरी बात ?

माफ करना
फिर गलती हुई—
जो चाहता हूँ मैं
वह कहना नहीं आता।

गीत

देखना नऽ सूरज
बीनना नऽ गेहूँ
फूल सी आँख कुम्हलायेंगी
जाती है, जा
दुबली हो मत आना।

कूटना नऽ धान
पीसना नऽ जौ
दूब सी बाहें पियरायेंगी
जाती है जा
सावन में आ जाना।

लीपना नऽ आँगन
माँजना नऽ बासन
चाँद सी हथेली करियायेगी।
जाती है जा
गोदी में चंदा ले आना

ऽ ऽ

६१७

घू गई बात
घुर घुर म
श्था नही
दर सन श्र

श्रादत
लोगो को ।

माफ करन
गलती हुई
हँस पड़ा

दुख गया ।

माफ करन
फिर गलत
जो चा
वह ८

निरजन महावर

अजनबी

अपनी अपनी जगह पर
सब थम गये हैं।
—पहाड़ नदियाँ गाँव
ग्लेशियर हवा मोड़
रास्ते और चौरस्ते
यह समूचा आसमान
और इस पर तैरते तारे
सब थम गये हैं।
आँखों में थमे हुए दृश्यों में—
यह मैं हूँ
जो टूटकर सितारे सा सरकता हूँ।

दसों दिशाओं में एक ठहराव है
इस ठहराव में
एव कुत्ते भौंकते हैं
या मोर द्वारपालों की तरह
कयेउ हू कयेउ-हू करते
चौंक पड़ते हैं
अजनबी वह मैं हूं
जो हवा मे तीर बन कर सरसराता हू।

केंचुली में गर्भ में

बहुत चाहता हूं—पूर्ण होते दिन को
समय की नदी में सिरा दूँ
और हर नये दिन को नये पुष्प सा
आंगन बीच खिलते देखूँ
किन्तु ज्यों ही सूरज डूब जाता है
मन ऊब जाता है।

तारीख बदलते समय
मेरी अंगुलियां सुन्न हो जाती हैं
और मन केंचुली में लिपटे हुये सांप सा
छटपटाता है।
सागर के वक्षस्थल पर
दौड़ लगाती हुई लहरों को बनते-बिगड़ते देखकर
लगने लगता है कि
जीवन कितना निस्सीम और निस्संग है।

बहुत चाहता हूं
धरती पर दूब सा रच जाऊँ
और जमाने का सम्पूर्ण दुख
मुझ पर ओस बनकर बिछ जाय
ताकि भविष्य के चरणों को
शीतल और सुखद जमीन मिले।

मैं अपनी बाँहें
दिशाओं की ओर फैलाए खड़ा हूँ
कि यह आकाश मुझमें समा जाए
और बादलों के नर्म नर्म टुकड़े
मेरे जलते हुए नैनों को नम कर दें।
हवा आये और मुझे
जीवन की नयी बिल्कुल नयी जीवन
सा हिला दे।
कहीं तो कोई सरसराहट हो जो
यह दुःख कम कर दे।

मैं आकाश में ऊँचा ऊँचा उड़ कर
उसे अपने कोमल पंखों से छू लेना चाहता हूँ
पर वह और भी दूर चला जाता है
और तब मैं उस सुख से अनुभूत नहीं हो पाता।

मैं बादलों को पकड़कर
अस्पतालों तक ले जाना चाहता हूँ
कि करुणा उन्हें द्रवित करदे
फूलों को
बच्चों के पीले पीले चेहरों में घोल देना चाहता हूँ
बहारों को सड़कों पर
मांड दूँ तो कितना अच्छा लगने लगेगा
यह शहर।

मैं पुष्प की तरह खिलना चाहता हूँ
लेकिन धूप परस नहीं देती

लेकिन आकाश मेरी दाहों में से
सरक जाता है।
लहरों की तरह दौड़ना चाहता हूँ तो
सागर वाष्प बनकर उड़ने लगता है।

बहुत चाहता हूँ कि खुलकर हँसूँ और हँसी को
उदास चाँदनी रातों में रंगों के खेतों सा रोल दूँ।
लेकिन मैं इन सब से वंचित रह जाता हूँ।
यूँ तो अब भी बहुत कुछ
बकाया है। अब भी मैं भीड़ में घिरा हूँ
पर भीड़ कोई धूप तो है नहीं कि खिल जाऊँगा।

असपृक्त रह जाता हूँ
खिल नहीं पाता हूँ
तब मेरा मन
गर्भ में पूर्ण विकसित शिशु की भाँति
छटपटाता है
उफ। इस धरती को कितनी पीड़ा होती होगी।
वह मुझे क्यों नहीं दे देती?
इस तरह कोख में कब तक ढोएगी?
काश यह भीड़ भी कोई सूर्य होती।

मेरे और अन्य लोगों के बीच

यह नहीं कि आकाश अब
उतना नीला नहीं रहा
यह भी नहीं कि
फूल अब उतने चटख नहीं होते।
हवा अब भी प्रसन्न है
और धूप में अब भी उष्णता है।

इस पृथ्वी से पृथक
मेरी कोई पृथ्वी नहीं है
न ही इस समाज से पृथक कोई समाज।
न कोई अलग लोक है न कहीं अलग दुनिया।
न तो मेरी कोई भिन्न इकाई है
और न ही कोई अस्तित्व।
फिर भी एक विचार बार-बार
मुझमें कौंधता है—
कि कुछ है जो मुझे इन सब स्थितियों से अलग करता है।

विवेक जो अब भी मेरे साथ है
मुझे सोचने पर विवश करता है—
कि मेरे और अन्य सब लोगों के बीच का स्थान
एक बहुत बड़ा शून्य बनकर रह गया है
और एक पृथक एवं सत्ताहीन इकाई के रूप में

जीने के लिए मैं विवश कर दिया गया हूं ।

इस शून्य के उस पार
मैं अब भी
मकानों को, सड़कों को
और अनेकानेक भागती हुई आकृतियों की भीड़ को
देख रहा हूँ ।
उनकी आवाज मेरे कानों तक पहुंचते-पहुंचते
हल्ला बन जाती है
और उनका प्रत्येक आचरण
हवा को मथती हुई विभिन्न आकृतियों के समूह की दौड़ ।
लगता है
ये आकृतियां मेरी परिचित हैं
और इस हल्ले में घुले हुए शब्दों के अर्थ
कभी मैं समझता था ।

न जाने
कितना समय व्यतीत हो चुका है इस बीच !
यह भीड़ अब
घिस-घिस कर जितनी धुंधली हो चुकी है ।
लोग महज चर्बी भरी हुई छिद्रदार आकृतियों का
समूह मालूम होते हैं ।

इस हल्ले के जिस शब्द को
मैंने मां के मुख से लोरी में सुना था ?
और जिस शब्द को
उच्चरित करते मेरी प्रेमिका के मुख पर
अनिमेष आभा आ गई थी ? मुझे कुछ भी याद नहीं !

मेरी परछाईं तक
मुझे अपरिचित लगती है ।
लगता है मेरी स्मरण-शक्ति गुम होती जा रही है ।
मैं तलाश किया [illegible]
और पुस्तकों के अंदर और किताबों में
[illegible] तर्क को भी भूल चुका हूँ ।
क्या इनमें पहले
कोई मूल भूत फर्क रहा है ?

ओह ! मुझे कुछ भी तो याद नहीं आता ।

टिक टिक टिक की यह ध्वनि
घड़ी की है
या मेरी धड़कन है ?
कमरे में गूंजती हुई आवाज को
पहचानने का प्रयत्न करने पर
आश्चर्य होता है कि वह मेरी अपनी ही आवाज है ।
कभी-कभी मुझे लगता है
कि मैं आकाश में धंसा हुआ एक पर्वत शिखर हूँ
और इस अंतराल में
न जाने बर्फ की कितनी परतें
मुझ पर जम गई हैं ।
न जाने मैंने इस स्थिति में
कितना समय काट दिया है ।
निर्लिप्त होने के सतत प्रयत्न में आँखें मूंद
[illegible]

माथे पर किसी हथेली का स्पर्श अनुभव कर
जब बंद नेत्र खुल जाते हैं
तो देखता हूँ कि वह
मेरी ही हथेली है खुरदरी और उष्णताहीन।

धूप मेरी आँखों में भर जाती है
जमी हुई बर्फ पिघलने लगती है
और मुट्ठियाँ खोलते ही
आकाश मेघाच्छादित हो जाता है।
हल्की-हल्की फुहार में
इन्द्रधनुष बनते हैं और मिट जाते हैं
उस समय वहाँ मेरे सिवाय और कोई नहीं होता।

धूप के पात्र

उषा काल के साथ मेरी
यात्रा आरम्भ होती है
और मैं धूप के पात्रों
का पीछा करता
एक निरंतर पथ पर आगे आगे
बढ़ता ही जाता हूँ ।

अविरल गति से बढ़ते जाते हैं
धूप के पात्र
विश्राम-हीन पथ होता जाता है प्रशस्त—
नगर-नगर, गाँव गाँव ।

यह अनन्त पथ
जिस पर संध्या एक विराम की तरह
आती है और हर विराम
एक नया आरम्भ बनकर अग्रसर होता है ।

इस दुर्गम पथ पर
मैं अपने प्रियजनों अपने सह-यात्रियों को
सूत्रबद्ध करने के प्रयत्न में
बिखर बिखर जाता हूँ ।

उनके सधे हुए हाथों की अगिनत पताकाएं
वायुमंडल में चिनगारियों की तरह तैर रही है ।

संजोया-सम्भाला न गया
तो अराजकता रौंदकर उन्हें
राख कर देगी।
इसके पूर्व कि सूर्य अंधकारमय हो जाये
नक्षत्रों में विस्फोट हो
और ग्रह अपने पथ से
विचलित होकर आपस में टकराने लगें
मैं अग्नि का एक सैनिक बन जाना चाहता हूँ।
नावों के पाल खोल
हम नये-नये द्वीपों की खोज में
चल पड़े। समुद्रों को तूफान की तरह रौंदते
क्षितिजों को काट-छाँट कर
समुद्र की अतल गहराइयों में फिरते
नये भूखण्डों में प्रकाश के बीज बोने निकल पड़े।

हमारे देश से टकराकर सीमान्त
पागल हो उठे
अंधकार के [illegible] को हमने
तेज धार वाले चाकुओं से चीर दिया,
जालों की तरह
साफ होता गया अंधकार।
नये भूखण्डों ने हमें
अपनी बाँहों में समेट लिया।

हमने पवन [illegible] की शक्ति [illegible] द्वारा—
[illegible] थे। [illegible]
को और [illegible]

सूर्य की तरह प्रज्वलित [illegible] और
पृथ्वी की तरह [illegible] परिचालित हूँ
हम रहे [illegible]
प्रकाश में [illegible] रहे थे।

[२]

इस पथ पर
शांति स्थापनार्थ अनेक लड़ाइयाँ
लड़ी जा रही हैं
रक्त-रंजित टूटी तलवारें चारों ओर
बिखरी पड़ी हैं।
असंख्य मनुष्यों के
लाशों के ढेरों पर बेतरतीब पड़े हैं।
नष्ट हुई सभ्यताएं
भयावह निर्जन ढूह बन गई हैं।
पराजित निहत्थे लोगों की सन्ततों से
पीट-पीट कर दास बनाया जा रहा है।
और यह पथ निर्जीव लोहखंड की तरह
पड़ा सब सह रहा है।

मैं चलता ही जाता हूँ इस
निर्जीव पथ पर कि
कहीं किसी क्षितिज पर शुभ का आरंभ होगा
और नारकीय यातना की अभेद्य चट्टानें
विस्फोट में उड़ जाएंगी।
मार्ग की अनेक काली अभेद्य चट्टानों को काटकर
हमने सुरंगें निकालीं
अपने से विदा होते होते प्रकाश को पुनः पकड़ लिया है।

हमारी आदिम चेतना ने
गुहाओं से इसलिए प्रस्थान नहीं किया था
कि वह चलकर पुन: गुहाओं में भटक जाय,
हमारा अस्तित्व संकट में पड़कर
अराजकता को जन्म दे
पड़ौसियों द्वारा ही पड़ौसियों का वध हो
अपनी उद्दाम वासना की नारकीय खाइयों में गिरकर
हम निरस्त्र हों
सड़कों पर
उन्मादित पशुओं की भांति विचरण करें
रक्तभेद-वर्णभेद में उलझकर
बच्चों को नेजों पर उछाल दें।
मानव मात्र भीड़ बनकर रह जाय और
हर नगर
ईंट चूना सीमेन्ट और चिमनियों का
एक सौदा लगने लगे।
हमारा आदि-पूर्वज जब प्रथम बार
अपने मेरुदण्ड पर तनकर खड़ा हो गया था
और हम गुहाओं से निकल आये थे—
हमारे नेत्र प्रकाश में चौंधिया गये थे
वहीं से प्रारम्भ होता है यह पथ
और इस यात्रा के आदिम छोर पर
समय या युग इतना रंगा नहीं लगता।

[३]

इस महायात्रा में
अनेक राजमार्ग पथ और पगडण्ट

आ आ कर समाहित होते जाते हैं और यह पथ
विकसित और विस्तृत होता जाता है।

पथ के किनारे-किनारे
अनेक शिविर गड़े हुए हैं, जिन पर
पताकाएं फहरा रही हैं।
पताकाएं।
रंगबिरंगी पताकाएं। मोटे मोटे हरफों में
जिन पर नाम लिखे हुए हैं।
(या) प्रतीकात्मक संकेत बने हुए हैं।
इनमें से
बहुत सी पताकाएं कटने लगी हैं।
बहुत सी पताकाएं फटने लगी हैं
और बहुतों के रंग
उड़ने लगे हैं
और बहुतों पर लिखे हुए नाम
मिटने लगे हैं।

चलते-चलते मैं
कई बार थकावट महसूस करता हूं।
मेरे सहयात्री भी थक जाते हैं।
थके हुए लोग
इन शिविरों की ओर भागते हैं,
उनमें घुस जाते हैं और
पताकाएं फाड़ देते हैं।
लिखे हुए नामों पर
कीचड़ उछालते हैं, कालिख पोत देते हैं
और अपने नामों की
नयी-नयी पताकाएं गाड़ देते हैं।

मैं थका-माँदा, ललचाये नेत्रों से
इन शिविरों की ओर देखता हूँ
और किसी शिविर में
कर छिपाना चाहता हूँ।

तभी सूर्य में विस्फोट होते हैं
पृथ्वी मेरा आगार मेरी जड़
डोलने लगती हैं
हवा में प्रश्न टपकते हैं,
दिशाओं से आवाजें आती हैं—
ये खेमे तेरे नहीं हैं
ये मंजिलें तेरी नहीं हैं
ये छपनटियाँ तेरी नहीं हैं।

तब मैं सड़क किनारे
किसी वृक्ष तले
थकान झाड़ता हूँ,
साँसें काटता हूँ, और बढ़ जाता हूँ—
अपने सहयात्रियों को टटोलता उन्हें सूत्रबद्ध करता।

मैं बढ़ता ही जाता हूँ
मुट्ठियों में एक सख्त दबाव,
हृदय में ऐतिहासिक पीड़ा की अग्नि सजाये,
कि जब तक शेष हैं दृष्टि—
चलता ही जाऊँगा। बढ़ता ही जाऊँगा
और कहीं थककर गिर जाऊँगा
और लहूलुहान हो शक्तिहीन हो जायेंगे मेरे पैर
हाथों की अंगुलियाँ गल-गल कर गिर जाएँगी

और जब मुझसे आगे कतई नहीं बढ़ा जायेगा
तब मैं
पेट के बल कुहनियां टेक टेक रेंगूंगा,
दांत और नाखूनों को धरती में
गाड़ गाड़ घिस दूंगा और
अन्तिम श्वास के साथ वहीं कहीं बिखर जाऊंगा।
मेरी यात्रा में पथ हैं चौराहे हैं
विश्राम के लिए पड़ाव हैं, किन्तु मंजिलें कहीं नहीं।

इतिहास ने मुझे दृष्टि दी है
धूप के पांवों से लिपटी हुई
सभ्यता और संस्कृतियों के संग मैं
विकसित हुआ हूं खिला हूं, जिया हूं
और इस अंधकार के उस पार
भविष्य के गर्भ में छिपे हुए
प्रकाश को मेरे नेत्र
आतुरता से अगोर रहे हैं।

आता हूं मैं

तुम्हारे सुसज्जित नगर के
वायुमण्डल में आज
जयघोष तैर रहे हैं
स्वागत द्वारों में जुलूस बढ़ रहा है
चप्पलें चटकाता इस रेल के पीछे-पीछे
आता हूं मैं।

मेरे लिए
कहीं भी नेत्र नहीं चमकते
स्वागत के लिए कहीं कोई हाथ नहीं उठाता
कहीं परिचय की मुस्कान तक नहीं
अपनी पतलून की जेबों में सुरक्षित
अतीत का खोटा सिक्का टटोलता,
टूटी चप्पलें चटकाता
फिर भी आता हूं मैं।

आकाश में तैरता
सांवला बादल एक जिन्दा तारा
जिसके लिए किसी को न सुख है
न किसी को वेदना।

फिर भी इस नगर की धूप में
एक छाया की तरह मैं

पैठ गया हूँ ।
कितनी नीरवता है इस कोलाहल में ।
जयघोष नारों और ऊहापोह में
रगती अपनी धड़कनों को
कानों पर टकराते महसूस कर रहा हूँ ।

तुम्हारे ड्राइंग रूम में मौन बनकर
अब भी आता हूँ मैं ।
उदासी तुम्हारे ऐशो-आराम पर छा जाती है
उस क्षण धरती का समस्त ऐश्वर्य भी
तुम्हें मेरी छाया से नहीं उबार पाता ।

तुम्हारे सपनों में मैं
एक फेंके हुए पत्थर की तरह आ गिरता हूँ
और झनाझर कांच के टुकड़े
फर्श पर बिखर जाते हैं
मेरे अट्टहास से तुम कांप जाते हो ।
चीख सुनकर तुम्हारी बगल में सोयी हुई
मेरी प्रेमिका तुम्हारे शिशु की जननी
करम ठोक कर जिन्दगी को कोसती है ।
पालने में झूलते तुम्हारे शिशु से
वह चिपट जाती है
तब जाकर कहीं उसे सुकून मिलता है ।
क्योंकि उसके स्तनों पर टिप टिप करती
तुम्हारे शिशु की धड़कनों में —मैं
अब भी जागृत हूँ ।

उसकी खोई-खोई आंखों में
मैं अब डूब चुका हूँ

नीली-गहरी झीलों मे डूबते
मसून अभिलाषाएँ सपने
तुम्हारे शिशु के रूप मे
युग का अंतिम और एकमेव सपना बन
फिर भी आता हू मैं।

अतृप्ति हू व्यथा हू मैं
भग्न आशाओं की कथा हू मैं
तुम्हारे नगर की धूप मे रेंगता
तुम्हारे सपनों मे जागृत
तुम्हारे शिशु मे धड़कता
अब भी आता हू मैं।

क्षयग्रस्त

हमारे पैरों में थकान रम गई है
हमारे जर्जर कदम डगमगाने लगे हैं
हमसे अब और नहीं चला जाता
हम पथों से पूछते हैं—
मंजिलें कहाँ खो गई हैं ?

हमारी पलकों पर दर्द की पर्तें जम गई हैं
हमें अब कुछ नहीं सूझता
हम क्षितिजों से पूछते हैं—
संवेदनाएँ कहाँ खो गई हैं ?

पपड़ियाए हुए ओठों को हम जीभ से सिक्त करते हैं
किन्तु अभिव्यक्तियाँ शिथिल हो चुकी हैं
हम हवाओं से पूछते हैं—
अनुभूतियाँ कहाँ खो गई हैं ।

हमारे कानों में शोरगुल और चीत्कार भटक गये हैं
चारों ओर श्मशान भूमि की नीरवता है
हम दिशाओं से पूछते हैं—
संगीत कहाँ खो गया है ?

मेरे अन्दर बाहर आजू बाजू हर तरफ एक धुआँ उठ रहा है
मैं कड़ुवाए हुए नेत्रों से

घुनते हुए दरख्तों में डूबती हुई मीनारें देख रहा हूं ।
डूबती हुई मीनारें
मस्जिदों की, संवेदनाओं की, अनुभूतियों की मशीन की ।
हमारी स्थापनाओं के शिखर धुएँ में डूब गये हैं
और हमारे मूल्यों पर कालिख पुत गई है ।

[२]

हमारे हृदय में अनास्था स्फोटों की तरह बढ़ती जा रही है ।
हमारे नाखून अकर्मण्यता के कुष्ठ से गल-गलकर गिर रहे हैं ।
हमारी नसें
चिटख-चिटख कर सड़कों पर सर्पों की तरह भाग रही हैं ।
हमारी पसलियाँ हवा में आतिशबाजी की तरह उड़ रही हैं ।
हमारे फेफड़े गिद्धों की तरह
सुदूर आकाश में लाशों की तलाश में उड़े जा रहे हैं ।
हमारे मेरुदण्ड टूट टूटकर बैसाखियाँ बन लंगड़े युग को ढो रहे हैं ।
हमारी भावनाएँ भ्रूणों की तरह
यन्त्र-विज्ञानों द्वारा चीथी जा रही हैं ।
हमारे हृदय सर्वसंहारक विस्फोटकों को
बड़े-बड़े रॉकेटों की तरह ढो रहे हैं ।

आदिम स्पंदन के गर्भ में सुरगें लगाती हैं।
हमारे नेत्र रडार यंत्रों की भांति युद्ध का संचालन करते हैं।

सड़कों पर घरों में दफ्तरों में, दर्शन की किताबों में
फटी हुई जेबों में और राष्ट्रों की सरहदों में
पथराई हुई आंखों में आकाश पर और समुद्र के गर्भ में
दिलों में दिमागों में यानी कि हर जगह
हमारी महत्वाकांक्षाओं के बीच अनवरत युद्ध लड़े जा रहे हैं।

एक धमाके के साथ विस्फोट में
हमारी सभ्यता का विनाश
एक विशाल गुम्बद की तरह उड़ जाता है।
पर्वतों के आपस में टकराने की गर्जना में —
विद्युत की कौंध की तरह
प्रकाश के अन्तिम दर्शन होते हैं।
अग्नि का सैलाब दिशाओं में फैल जाता है।

भयाक्रान्त समुद्र क्रन्दन करने लगता है और अट्टहास
प्रमत्त पशुदल की भांति समुद्र को मथ कर दलदल बना देता है।
हरियाली जलकर राख हो जाती है
और नदियों का जल शर्म से गदला हो जाता है
क्योंकि करुणा के स्रोतों से
स्याह विषैला रक्त प्रवाहित हो रहा है।
हमारे हृदय दंगों में उलझे हुए नगरों की तरह उजड़ जाते हैं।
सभ्यताएं देखते ही देखते ढूह बन जाती हैं।
विषाक्त धुएं का बादल फैलता जाता है
और उड़ते हुए पक्षी उसकी चपेट में आ—
झुलस झुलस कर गिर पड़ते हैं।
दिशाएँ भय से कांप जाती हैं।

फिर भी हम लड़ते हैं
क्योंकि युयुत्सा की जड़ों का जंजाल हमारे आमाशय से होकर
मस्तिष्क तक फैल गया है।
हमारी भूख ही हमें लील रही है।

अब जो पक्षियों का कलरव बन हमारे आँगन में चहकती थी
नगर के चौक में मृत पड़ी है
और संध्या
पराजित जाति के ध्वज की तरह क्षत-विक्षत हो गई है।

हर तरफ धुवाँ है
और मैं बुझते हुए नेत्रों से
घुटते हुए दृश्यों में टूटती हुई मीनारें देख रहा हूँ।

[४]

समुद्र के गर्भ में पनडुब्बी भटक गई है
और मेरी खोपड़ी खोखली हो गई है।
विस्फोटकों को ढोता हुआ मेरा हृदय
दुर्घटनाग्रस्त हो गया है
और मेरी छाती में शून्य घनीभूत हो उठा है।
सहमे हुए परिंदे मेरे नेत्र
चेहरे को पुते हुए कनवास की तरह छोड़कर
सुदूर आकाश में उड़ गये हैं
और मेरे माथे में रिक्तता गहरा आई है।

इस शून्य की पर्तें उद्घाटित कर
मैं उसे अनावृत करता हूँ

शून्य के अन्दर शून्य
और फिर शून्य
और फिर शून्य
अंधकार दर अंधकार की तहों सा आवृत्त शून्य।
इस खोखलेपन में
मैं इस किनारे से उस किनारे तक दौड़ लगाता हूं।
जैसे एक तट से उठी हुई लहर समुद्र के वनस्थल को
रौंदती हुई दूसरे तट तक पहुंचती है।

क्रुद्ध वनपशुओं सी मेरी आवाज
इस अनन्त शून्य के व्यूह की प्राचीरों से टकराकर
बिखर जाती है।
मेरी निस्पृह हँसी सम्पूर्ण आस्था को झकझोर कर
मेरी पवित्रता को नग्न कर देती है—
पवित्रता अवास्तविक एवं अयथार्थ।

निरीन्द्रिय और निरपेक्ष
मेरी चेतना अभेद्य चट्टानों से टकराती है
और मैं होश में लौटने लगता हूं—
काई के लौंदे सदृश्य मेरा हृदय स्पंदित होने लगता है।
और सम्पूर्ण यातना पुष्पोद्यान की तरह खिल उठती है।

नेत्र विहीन—
फिर भी मैं प्रकृति के रंगों को भोगता हूं।
कानों के पर्दे चीत्कारों से फट गये हैं
फिर भी लहरों से उठते हुए संगीत से अभिभूत होता हूं।
टूटी हुई टांगों से दिशाओं को महसूस करता हूं।
ध्वस्त भुजाओं से आकाश को टटोलता हूं।

हर तरफ धुंआ है
और मैं कड़ुवाए हुए नेत्रों से
घुलते हुए दृश्य में डूबती हुई मीनारें देख रहा हूं ।

सोचने पर विवश हूँ

शक्तिशाली मेरुदंड पर तनकर खड़ा हुआ
सूर्य को अर्घ्य अर्पण करता मेरे पिता का व्यक्तित्व
बोझ से झुकने झुकने को हो रहा है।
समय की मार से उनकी त्वचा उधड़ रही है।
बोझ अनुक्षण बढ़ता ही जाता है।
मेरे माध्यम से निर्मित इन्द्रधनुष सब
उनके नेत्रों में धुँधले पड़ते जा रहे हैं।

यह सब सोचने पर मैं विवश हूँ किन्तु जब सोचने लगता हूँ
तो चेतना साथ छोड़ देती है।

[२]

मैं बड़ी-बड़ी बातों से ऊब चुका हूँ
दुःखभरी गाथाओं से भी मैं ऊब चुका हूँ
उपदेशकों को अपनी ओर आता देख
हृदय की धड़कनें बढ़ जाती हैं।
शुभ चिंतक जहर पीकर पचाने की सलाह देते हैं।
वे कहते हैं यह तो सनातन है,
सर्वव्याप्त है,
'दुख हमको मांजता है उनके लिए दुःख
एक फैशन है फलसफा है।

ये सामाजिक अभिशाप उनकी मानसिक व्यायाम
और मनोरञ्जन के साधन हैं।

सच उनके भद्दे नाखून
चिपचिपे नेत्र और पीले-पीले दाँतों को देखकर
मैं स्वप्न में भी भय से चौंक पड़ता हूँ।
आह मैं तो अभी खिल भी नहीं पाया हूँ
और मेरी सुकुमार पंखुड़ियों पर वक्र पड़ने लगी है।

[३]

हर तरफ अभाव है, अनिश्चय है, कटुता है अनास्था है।
सागर वाष्प बनकर उड़ गया है
और मेरी नाव रेत में धंस गई है।
सहायतार्थ कातर नेत्र उठते हैं
लोगों की बढ़ी हुई मुट्ठियों में सिर्फ आँसू हैं
और घुमते हुए दिलों में दिये हुए स्तुति स्वर।
आह! मेरी नाव रेत में धंस गई है
और चिलचिलाती धूप के उस पार
बनती हुई मरीचिका में
मैं अब भी दूर कहीं टगा जा रहा हूँ।

मैंने उनसे अनेक बार कहा है
कि वे बकवास बंद करें।
जब वे खामोश होते हैं—तो मरे लगते हैं।
अजायबघरों में मैंने उनके बुत देखे हैं।
न मालूम लोगों को क्या हो गया है?
न जाने जिन्दगी ऐसी क्या होगयी है?
न हम खुलकर हँस पाते हैं न रो पाते हैं,
तनाव सदैव हमारे जबड़ों को आक्टोपस की भांति
जकड़े रहता है।
चमक पैदा होते-होते ही नैनों में विषाद उभर आता है।
शाखों पर लदे हुए पुष्प
उस समय अखबारनवीसों की खोखली हँसी बन जाते हैं।

[५]

नगर की गगनचुम्बी मीनार से खड़ा होकर देखता हूँ
कछुओं की तरह रेंगती हुई ट्राम
पिस्सुओं सदृश सड़क से चिपकी हुई मोटरें
फाड़कर फेंके हुए रद्दी कागजों की भांति हवा में
उड़ते हुए लोग
और शाख से झरे हुए पुष्पों-सी बदरंग स्त्रियां
उफ! मुझे मितली आ रही है इस दृश्य पर।
और कुछ समय पश्चात् मुझे भी इस दृश्य का
एक बिन्दु बनकर रेंगना होगा॥

मूलभूत अनिवार्यताओं के बोझ से दबा दबा
वंचनाओं, पश्चातापों और विवशताओं के कूबड़ को
अपनी पीठ पर ढोता

६

समय के साथ बदलते हुए सत्य को पकड़ने में
अनुतप्त प्रयत्नशील मेरा संघर्षरत मध्यमवर्गीय मुक्तिबोध
क्या पतझर अभिशापित ठूँठ ही बना रहेगा ?

[६]

आँगन में आरामकुर्सी पर आँखें मूँद
इस गतिमान जगत से जब निर्लिप्त होना चाहता हूँ
तभी पलकों पर महसूस करता हूँ
कोई मृदु स्पर्श।
मस्तिष्क में दबी हुई आग पिघलती है
सम्मुख रखी हुई कुर्सी क्या सदैव ही खाली पड़ी रहेगी ?
मेरा लहूलुहान और अतृप्त हृदय क्या
अपूर्णता में ही दम तोड़ देगा ?

आँखें खोलने पर
आकाश और भी अधिक नीला लगने लगता है।

[७]

जब भी विवेक मेरा साथ देता है।
विद्युत् के झटके के अनुरूप मुझमें कहीं
एक विचार कौंधता है
अभी तो कष्टों की शुरुआत है
आशंकाओं के हाथों को पकड़ कर घड़ी बढ़ती ही जाएगी।

अनिश्चय और पराजयता के सम्मुख
मेरी दृढ़ इच्छा अपनी चट्टान की तरह तनकर
खड़ी हो जाती है।

धूप की स्नेहमयी अंगुलियां मुझे छूती हैं
—मैं पंखुड़ी-पंखुड़ी हो जाता हूं।
वायु के सनसनाते हुए झोंके
मुझे सुदूर अन्तर्प्रांतर तक झकझोर देते हैं।
मेरे रोम-रोम से प्रस्फुटित होकर एक संगीत
दिशाओं में घुलने लगता है।

निरंजन महावर

दुखती हुई रगें

डॉक्टर! काट दो मेरी दुखती हुई रगें।
मैं उन्हें पीछे अतृप्त छोड़ आया हूँ।
वे सब रगें
जिनमें कभी कोई अग्नि प्रज्वलित हुई थी
और असमय ही बुझ गई।
आज कड़ुवाहट भरा दम-घोंट धुआँ
अंधे कीड़ों सा भुनभुनाता हुआ
उनमें भटक रहा है।

डॉक्टर! काट दो वे तमाम रगें
वे जोड़-तोड़ वे ग्रंथियाँ—
जो मेरी गति को वेदना में जकड़ती हैं।
जीभ से आमाशय तक की तमाम रगें
जो आज तक अतृप्त हैं।
मेरी जीभ में खुश्की है
मेरी अंतड़ियों में ऐंठन है
मन में घुटन है
और माथे पर बल हैं।
अब भी कई बार सूखी अंतड़ियों में
कोई भूखा भूखा दर्द सा कराह उठता है
और अनजाने ही मेरी जीभ
चिड़चिड़ी हो जाती है।

और वे तमाम रगें भी डॉक्टर
जो आमाशय से हृदय तक धुवें में अंट गई हैं।
मेरे नेत्रों की चमक नष्ट हो गई है
शिराओं का तनाव ढीला पड़ गया है
हथेलियाँ कुम्हलाये हुए वनज पुष्पों की तरह
लटक गयी हैं।
फिरभी समय असमय
वहाँ बैठा परीलोक का क्षीणकाय राजकुमार
उठ बैठता है और उन्मादित गजराज सा
दिशाओं पर मढ़ी क्षितिजों की सीमाओं की
धज्जियाँ उड़ा देता है।
तब मुझे लगता है कि मैं अब भी जीवित हूँ।
उफ। उस समय मैं कितना कुरूप लगता हूँ।

काट दो। डॉक्टर काट दो॥
मेरी वे तमाम रगें
जिन्हें हृदय से मस्तिष्क तक
प्रचण्ड अग्नि ने उमेठ दिया है।
अब वे अभग्न रगें विकृत हो
अनकानेक ग्रंथियों का रूप धारण कर चुकी हैं
मेरे पावों में जड़ता है
मेरी भुजाओं को लकवा मार गया है
फिर भी मेरा वठकुण्ठा आत्माभिमान
घायल सिंह सा दहाड़ कर उठ बैठता है।
ऊंचे ऊंचे सिंहासन दीमक के खोखड़ों के सदृश
जमीन पर आ गिरते हैं और मेरा गौरव
उन्हें रौंदता हुआ आगे बढ़ जाता है।

डाक्टर ! काट दो मेरी वे तमाम रगें
अन्यथा मैं एक प्रलयकारी तूफान बन जाऊंगा
एक भूकम्प बनकर सर्वनाश कर दूंगा
और ज्वालामुखी बनकर फट पड़ूंगा
या गाज की तरह
इस सभ्यता पर गिर पड़ूंगा।
डरो नहीं डाक्टर।
तुम्हारे हाथ कांप रहे हैं। तुम्हारा पीला चेहरा
तुम्हारी चेतना के लुप्त होने का साक्षी है।
पर तुम्हीं कहो आज
कितना मुश्किल हो गया है
आत्मा को बचा पाना।

इतना ही जीवन

छज्जे नीचे
रूफद भवन कबूतरों का जोड़ा
करता है घुटर्र-घूँ ।
टब के पानी में
फरफरा कर घुस हो जाती है गौरय्या
नीलकण्ठ बैठा रहता है
मुंडेर पर
आंगन बीच
बिछी रहती है हरी दूब ।
बगियाओं मे महकते हैं
अनगिनत पुष्प
भीने बादल की बाहों में
बेकाबू हो उठता है पूरा चन्द्र
टेकड़ी पर बैठा मैं देखा करता हूं
झरने की कलकल मे घुलती किरणों को ।
चम्पई गदन पर लहराते सुनहरे बाल
याद हो आते हैं अनायास ।
भर आता है मन ।
कितना अच्छा होता
यदि होता बस इतना ही जीवन !

वियतनाम

इस धरती से पैर हटाओ
यह धरती मेरी है
मेरी मां रोपेगी यहां—
तुलसी का बिरवा,
मेरी बहन यहां—
रांगोली मांडेगी,
मेरे बापू खाट बिछा कर बैठेंगे
और कुछ देर सगवारियों से गोठियावगे।
मैं तुमको यहां बारूद नहीं बिछाने दूंगा
यह धरती मेरी है।
मैं इस पर गुलाब की कलम लगाऊंगा
जो कल रक्तिम हो फूल उठेगी
और सुगंध—
फैल जायेगी धुपती—आंगन में।

श्यामसुन्दर घोष

सुबह का ऋण

एक विकल धूप
यह महाजन सुबह का ऋण दे गया।
और बदले में सभी कुछ ले गया।
इस तरह आकण्ठ ऋण में डुबा कर कोई
अगर कर दे अकिंचन, धन्य मानूँगा।

फिर हथेली पर धरो अंगार

मैं रचूंगा सेतु सांसों का
दस्तक दो तुम खुले सम्भावना का द्वार।
लो छुड़ाता हूं उगलियों पर लगे
दाग कटुता के।
पोंछता हूं तूलिका के विकर्षक ये रंग।
अस्वीकृत प्रारूप करता हूं
जिसे अंतिम सत्य माना था।
निषेधों का क्षण वरे सम्पूर्ण जीवन
कब किसे होता सहज स्वीकार?
जहर से भिद कर
नीलवर्णी हो उठी है प्राण-मन-काया।
विवशता में ही हुई उपलब्धि
अब सहज वैशिष्ट्य देती है।
और अब तो मैं
रिक्त होकर भी निनादित हूं।
फिर प्रताडित करो द्विगुणित वेग से
फिर हथेली पर धरो अंगार।

शाम एक इम्प्रेशन

शाम एक उदास लड़की की तरह
गुनगुनाती चल रही फुटपाथ पर।
और मैं बच्चे सरीखा
झिलमिलाती ओढ़नी को देखता
पीछे लगा हूं।

सन्नाटा

सन्नाटा होटल का बेयरा है
कुंठा का टोस्ट और उदासी का आमलेट
साफ चकमक प्लेट में सजाकर लाता है
सम्मुख रख जाता है।
बना से हम कांटे और चम्मच से
धीरे-धीरे कुतरें
गले के नीचे उतारने का साहस नहीं करें।
वह बिल लेकर आयेगा
टिप वसूलेगा, हलके मुस्करायेगा।

कुछ भी हो

कहीं कुछ भी हो
कोई कुछ भी कहे
वियतनाम में हजारों लोग मरते हैं, मरें
कोई हाइड्रोजन बम का प्रयोग करता है करे
कोई कैंसिल करदे हमारे देश के साथ हुआ करार
किसी बात पर लानत भेज दे हमें समूचा संसार
सहायता, सद्भाव और सहयोग के नाम पर
हम कर्ज लेते हिचकेंगे नहीं
भीख मांगने शर्मायेंगे नहीं।
अब तो हमारी महिलाओं के गर्भस्थ शिशु
मुंह बाये हाथ फैलाये रहेंगे
आंखें निहारती रहेंगी समुद्र
कि कब आते हैं नाज के बोरों से भरे जहाज
कि कब दी जाती है दुग्धचूर्ण के लिए
प्रलोभनपूर्ण आवाज।

फिर असंख्य चमकीली किरनों के सिक्कों में
इसे भुनायेंगे
हथेलियाँ भर-भर लुटायेंगे ।

यह आखिरी सिक्का
अनजाने ही
हमें वसीयत में
दे दिया गया है
हम हारेंगे नहीं
फूल हवा, कलरव, पराग
न जाने क्या-क्या उगायेंगे ।

प्रतीक्षा है

सिंधु-तट पर खड़ा हूँ
प्रतीक्षा है किसी ऐसे पोत की जो कालवाही हो
मनुज के मन्वावधि आक्रोश को संजोये
दर्प के दृढ़ चरण धरता
सिंधु के विक्षुब्ध चक्रावर्त को
मार कर गति के थपेड़े
ऊर्मियों के पतन कारागार में
दफन करता चले।

चमकता मस्तूल जिसका
प्रखरतर मध्याह्न के शत-शत समन्वित सूर्य की
आभा मलिन कर दे
पाल जिसके हवाओं की विपथगामी भुजाओं को
तोड़ दें
आंधियों को मुट्ठियों में चबा डालें
हस्तियों के सहस्रा चिंग्घाड़
जिसकी पग-ध्वनियों में डूब कर यों लगें
जैसे कहीं पर कुछ गूँजता हो।

एक किरण

एक किरण मुट्ठी मे मेरी
औ' मैं सूय बन गया हू

अब तो अधियारा लुकता छिपता है बन्द कपाटो में
लगडी कु ठा फिरती वन वन सूने घाटो-बाटो मे
उदयाचल पर टके रहे ये कुहरो के भारी पर्दे
एक किरण मुट्ठी म मेरी औ मैं सूर्य बन गया हू ।

अब निर्भय चौकड़िया भरते विश्वासो के मृगछौने
आखेटक संशय-विजड़ित क्षण लगते आज बहुत बौने
दुरभिसधियां, तोड़ रही दम एक शब्द भूला-भटका
मेरी मुट्ठी मे आया है औ' मैं सूर्य बन गया हू ।

प्राक्कथन दो

प्राक्कथन हूँ मैं किसी अनलिखी गाथा का
क्या छुई परिशिष्ट बन कर बनी ?

अभी ही छिटका ज्वलित भूगर्भ से
आलोक का अधिकांश वातावरण में संन्यस्त।
इसलिये ही लग रहा ऐसा
एक क्षण में ज्वलित उल्का पिंड सा स्वर तीव्र,
एक क्षण उस सूर्य सा जो हो कुहा-विन्यस्त।
किन्तु इतनी बात तो तय है
अम विद्युत पत्र सी हत भागिनी
नियति मेरी नहीं।
उदय के क्षण में अजब है यह विपर्यय
चतुर्दिक हो क्षुब्ध पारावार।
हर मसीहा चाहता है
हर किरण मुड़नी रहे निश्चित परिधि में
पराजय कर ले सहज स्वीकार।
हर युवा स्वर छुई सी परिशिष्ट बनकर
अनात्त गाथा में
हुआ है यह कहीं।

सलामी दो

अंधेरी गली में पैदा हुई इन सूर्य किरणों को
सलामी दो।

अंधेरे के कठिन आवर्त में
छुन से घिरे भटके
समय की वर्जनाओं से निहत्थे जूझने वालो,
कठिन सशय-जनित परिवेश से जकड़ी
झगड़ती सी
जटिल सच्चाइयों की धड़कनों को बूझने वालो।
अंधेरी घाटियों मे सिर पटकते हुए झरनों को
सलामी दो।

अधूरी बिम्ब-छवियों में नहीं सदर्भ अँट पाता
विरल अभिव्यक्तियां कुछ दूर चल दम तोड़ देती हैं
अधूरे अधपके सपने न कोई रग भर पाते
विवश सचेतना सघष से मुख मोड़ लेती है
कठिन मरुभूमि मे राहे बनाते हुए चरणों को
सलामी दो।

अंधेरी गली मे पदा हुई इन सूर्य-किरणों को
सलामी दो।

नये शिशु का जन्म

यह सुखद क्षण है।
द्वार को घेरे दिशाएँ खड़ी हैं
समुत्सुक हो उठा कृष्णा रात्रि, नभ की तारिकाएं
गवाक्षों से झांकती हैं।

भरा आंगन
खिलखिलाहट, कलरवों से गूंजता है।
रंगी पृथ्वी महावर-रंजित पगों से।
सुरभि श्वासों की, अलक की, पुष्प-मुख की
घुली है वातावरण में।
किंकिणी ध्वनि मधुर मीठी बज रही है
हवा शुभ-शब्द की प्रतीक्षा में
हर्ष विह्वल है—
विरल चलती उंगलिया से
वाद्य-यंत्रों पर
थाप देती है।

इन्द्रधनु के रंग सातों मचलते हैं
नृत्य करने को संवर कर खड़ी हैं नक्षत्र-कन्याएं
बगीचे की कली पत्ती घास कलगी
आ जुटी हैं
घन-दूबे पर चन्द्रो-सी उचक करके झांकती है
भरा है आंगन।

द्वार पर बैठे हुए दिक्पाल, नभ, भास्कर मरुत,
आलोक-धन्या कोटि कोटि देवता
विष्णु, शिव, ब्रह्मा, गणेशादि महत्तम
मौन कुछ गम्भीर से हैं
किन्तु सबके हृदय में है एक उत्सुकता।

धरा करवट लेती है
प्रसव-पीड़ा का निविड़ क्षण
योजनों तक अति सुखद कम्पन जगाता है।
पीत मुख को दर्द की आभा
नया सौन्दर्य देती है।

आज मैं बौरे रसाला-सा मुदित हूँ
हर्ष का उद्वेग मन में अट नहीं पाता
अभी मेरा द्वार-आँगन
गीत-वाद्यों से गुंजेगा
श्लोक आशीर्वाद के उच्चरित होंगे
वेद मन्त्रों यज्ञ ध्वनि से गगन व्यापेगा
महावर-रंजित पगों से दली जाकर
भूमि निज को धन्य मानेगी।
उषा, सन्ध्या तारिका सौदामिनी मिल कर करेंगी नृत्य—
आस्था की कनिष्ठा कन्या
नये शिशु को जन्म देती है।

चली आ रही आंधी

हू-हू करती चली आ रही आंधी
ये खेमे समेट लो
सन्दूकों में डालो झटपट
कांचों के रंगीन खिलौने
हल्की-फुल्की रंग-बिरंगी चीजें
कागज के फूलों की मालाएं, रंगीन किश्तियां
कच्चे रंगों की तस्वीरें
शाहों की चिड़ियां गु ग, देवता-देवियां

बहुत दिनों तक तुमने लोगों का मन मोहा
हल्के-फुल्के फैशन का बाजार रचाया
अपने सिर की कलगी में
कितनी ही चिड़ियों के पर खोंसे
खेमे गाड़े ध्वजा उड़ाई रथ दौड़ाया
लेकिन कोई है जो बड़ा निठुर अनाचक
देखा करता है दुनिया के गोरखधंधे
असल नकल का गाहक
नियामक घटनाओं के विद्युत वेग का
जो जीवन के लिए चयन करता है उपयोगी तत्वों का—
स्वस्थ पिंडलियां तनी भुजाएं
चौड़ी पेशानी, दृढ़ कंधे
स्वेद-बूंद कर्दम पंकिल पद

[illegible]

रेथ के भाल को दीपित करेगा
उग्रतर सक प वेष्टित करेंगे य- तन
इसलिए आश्वस्त हूँ, विचलित नहीं हूँ ।

दो पीढ़ियों की व्यथा

व्यथा झेली थी
पूर्वजों ने।
नहीं हमने।

तप्त रेती में चले वे
आंधियों में पले
वियाबानों में भटकते रहे
रात काटी ठूंठ पेड़ों तले
घायल वे गये
जल का उत्स पाने
योजनों का अनदेखा विस्तार
अगम जंगलों के अछूते शृंग
दलदलों में अभय धंसते गये
रौंदते ही रहे
हर दिशा हर कोण
क्योंकि मां की कुक्षि में थे हम।

ढूंढते थे वे सघन भू-भाग
जहां हो फल-फूल, झरने, लहलहाती घास
चांदनी शुभ्र रजत सी, उषा का आलोक
इन्द्रधनु का बिम्ब, वर्षा-मेह, सुखद प्रकाश
क्योंकि ऐसी भूमि में हो
भविष्यत् को जन्म देना था।

हम थोड़े पुष्ट हुए
चलने लगे घुटने टेक कर जब
मातृ मुख से सुनी हमने
पूर्वजों के कष्ट की यह कथा।

पिता तो अब भी लिए तूणीर-धन्वा
रौंदते थे जंगलों की भूमि
मापते थे पर्वतों की तलहटी दिनरात
थके हारे शाम को जब लौटते थे
हमें अपने वक्ष पर लेकर
मुस्कुराते थे।
और हम मृग शावकों की भांति
रौंदते थे घने घासों से ढके उस वन को।
मुदित होते थे।
यही क्रम रोज का था।

और जब कुछ बड़े हम स्व हुए
हमें भेजा गया शिक्षा हेतु
अपरिचित अनजान लोगों बीच
जगत जो बिल्कुल अचीन्हा था।
हम निरंतर संकुचित से रहे
अपने को हमेशा अकेले असहाय लगते रहे
अपरिचितों से हम न गाठें जोड़ पाये।
डूबकर आकंठ अपनी हीनता में
कहा हमने—
व्यथा झेली है पूर्वजों ने नहीं
हम ही झेलते हैं।

कुमारेन्द्र पारसनाथसिंह

बहिष्कृत सत्य

अकस्मात् आग लगती है। बिजली गिरती है। अकस्मात् बाढ़ आती है धरती डोलती है। ज्वालामुखी अकस्मात् फूट पड़ता है। अकस्मात—बिल्कुल अकस्मात् नदी दौड़ निकलती है—समन्दर के अन्दर हरकत पैदा करती है। सीप में मोती ढलते हैं। कमल झीलों और सरोवरों में खिलते हैं। सूरज चमकता है। और चांद दूर्वा और रेत पर एक सा सही करता है। रात होने पर कोई खुश होता है तो कोई मर जाता है। सुबह जागरण का सन्देश मिलने पर भी किसी की नींद नहीं टूटती और कोई रात-रात भर जगा रहता है। यह सब अकस्मात् ही होता रहता है। और जो अकस्मात् नहीं होता वह कुछ और होता है। जैसे धरती सीमित और आस्मान असीमित होता है। फिर भी एक रत्न-गर्भा कहलाती है। और दूसरा खाली रह जाता है।

अकस्मात् यह भी नहीं होता कि कोई किसी का खून करता है और कोई मारा जाता है। आग लगने के पहले ही आग बुझा दी जाती है। (क्योंकि यह दूसरी बात है कि वह साथी नहीं रहती।)—तात्पर्य अकस्मात् घटने वाली कोई घटना नहीं उसे तवारीख के ऊपर घटाया गया है।

सच यह बिल्कुल अकस्मात् नहीं कि सामर्थ्य और हीरे-जवाहरात से भूखी हड्डियों में चमक ज्यादा होती है। और लोग जिसे प्रेम और घृणा और जाने क्या-क्या कहते हैं समझते हैं, मैं उसे शुरू से इन्कार करता हूं।

उत्तराधिकार

ये लोग भी क्या खूब हैं। आदमी का अर्थ भी जानने पर तुले हैं। जानवर हैं। जिन्दगी को आदिम अहेर और दुनिया को जगन किये चलते हैं। बाहर निकलते हैं। चरते विचरते हैं। फिर, कन्दराओं में वापस हो जाते हैं। 'जोड़े' हुए तो रति करते हैं। या फिर रति के लिए ही उद्विग्न हुए रहते हैं। खाते नही। न ही पीते हैं। सिर्फ सोख जाते या पजा सख्त करते। और मारते मर जाते हैं।

बचे तो खड़े भद्द जाते हैं। और कोई व्यापार नही। नयी-नयी सृष्टि का विधान स्वयं विधि को मिटा कर ही करते हैं। शान्ति-सुव्यवस्था। अहिंसा और प्रेम। शर्त सहअस्तित्व की आरोपित सहयोग सहानुभूति, सद्भावना—सब मात्र प्रवचना है। दर्शन आत्म मथन नही ऊपरी मुखौटा है। बिना विश्वास, वि वास कर लेते हैं। और कोई बात नही ऊंचा उठ जाने के लिए ही ऊंचाई को छूते हैं

कैसी आस्था है यह। कैसा स्वांग है। सीजर के हत्यारे छाती पीट रोते हैं। ऊपर से। भीतर से दाव-पेंच चलता है। कितने कितने घोडे महत्वाकांक्षा के छुट ज ते। सरपट दौडते। छोटी जागीर की हरियाली कुछ टापो के नीचे रौंद जाती है लोग खडे खड़े मुह आंखें

फाड़ देखते, चल देते हैं। (कहां गिरा हाथी कहां हिरन मारा गया, कहां निर्दोष नीलगाय पर गोली छूटी या उजड़ा खोंता गौरया का—उंह क्या पड़ा।) जहां पसर पाने को जगह मिल जाती, पसर जाते हैं।

एक दिन उस गांधी को गोली मारी गयी। कल केनेडी का खून हुआ। आज आखिर थक कर यह नेहरू भी चुप हुआ। सारा-का-सारा यह आलम जैसे सो गया। धड़कनें सन्नाटे के सीने को चलती रहीं। मगर फिर वही क्रम। कॉफी हाउस, होटल और रेस्त्रां का वही जाना शोर। सिनेमा गृहों बाजारों और सड़कों की चमक-दमक वही। सट्टे और चोर-बाजारों की लूट और सर्दी दौड़ने की। वही भूख वही खाद। वही नींद और मैथुन। और मानव उपलब्धियों का दिन पर दिन मोटा हुआ जाता इतिहास।

काल निरपेक्ष दस्तावेज पर हस्ताक्षर एक अदना-सी बूंद था। लोग बिना दस्तखत या अंगूठे के टेप के गवाह। अखण्ड राज्य राम राजा का।

यह सहने की बात कोई अर्थ नही रखती। रस्सी सिर्फ राख हो जाती है। कि समन्दर के पेट में आग लगी रहती है—धरती भीतर से खौलती और राख और पानी है—कौन देखता है ?

दृष्टि समन्दर के उठते और गिरते हुए सीने—ऊँचाई-निचाई पर—धरती की रहती है। (कही कोई व्यतिक्रम नही होता।) मुर्गे समय से बांग दे देते हैं।

कुत्ते और स्यार भी नही चूकते। गदहो के लिए हर मास वैसाख ह । बिल्ली गुस्से मे पजे मार मिट्टी उछालती (अपने नख तोड़ लेती) है जबकि चूहो की मजलिस लगी रहती है। कैसी हिम्मत ह । देखते-देखते सब कुछ कुछ कुतर डालते हैं। और पता नही चलता।

जब कभी पता भी चलता है तो देर बहुत देर हुई रहती है सोये हुए जगल के स्वप्न-रत राजा की नीद अकस्मात टूट जाती है। बिल्कुल अकस्मात ही पहरा पड़ जाता है। गुस्से में राजा को दुर्ग तक का खयाल नही रहता। हुक्म जगल मे आग लगा देने का होता

है। (चूहों को जैसे भी हो तब खत्म करना रहता है।)

मगर चूहे भी क्या जगबाज हैं। पूछ से रूई का दुर्ग बाध लेत और खो चते हुए राजा के पास पहुच जाते हैं। बड़ी विनम्रता से कहत—हुजूर, हम हाजिर हैं। सारे जगल को क्यों जलाया जाता, जब जलने के लिए हम खुद ही आ पहु चे हैं।

राजा सब बात समभ जाते। हुक्म वापस लिया जाता। फिर, स्वादों की बस्ती बस जाती। और जगल को—जगल की सारी हरियाली को—रौनक को चूहे कतरते। आपरहा अनशन हिरनों और मोरों के गले पड़ जाता है।

दर्पण

यह कैसी है—किसकी है धुन ? सोना क्या बोले ? क्या बोले चांदी ? हीरे से क्या पूछूँ कोयले का गुन ? (कब वह काला है कब है लाल—हीरा क्या जाने ?) भूख के लिए अनुशासन क्या क्या सदाचार ? शोर अन्दर हो या कहो बाहर हो घर के, क्या मतलब । दो दो चार नहीं होता और चाहे जो हो ।— कितना अजीब यह आंखों का विनिमय-व्यापार ।

सुबह कब होती कब होती शाम । बिके हुए सपनों के लिए है कौन रात लाती आराम । एक आंखें उनकी हैं । एक आंखें इनकी । इतने बड़े फासले को पीता है कौन मैदान । जहां आंसू भी हुक्म पर चलते हैं, धर्म-ईमान सभी बन्दी हुए रहते हैं—राम राज्य लायेगा वहां कौन राम । एक राम उनके हैं । एक राम इनके । कौन समझाये । उनके झगड़े के बीच देखो, अब कौन कटता है राम ।

डाँवाडोल दुनिया है । गजब ग्रह योग । घर-घर में लगी हुई आग । आसमान माथा झुकाये है—जल नहीं पास । लकवा जो गया समदर को मार —आंखें फाड़ देखता है—बेबस बे-वाक् । प्राणों का मोह है कि है अब दे आखिर जायें कहां भाग । लपटों को कौन नाग नापे । कौन धरा भग्नावशेष को रखे सभाल ।

एक गगा धोयेगी कितनों के पाप।

आखिर कोई हिसाब-किताब। (ना) सब गायब हैं। चेहरों के रूप और रग तक बदले हैं। (सह-अस्तित्व का नमूना।) अब दिन हो मैं उल्लू भी देखने लग गये हैं। यहां मानसरोवर मे बगुले कहां मिलेंगे, हसों की पाँत हैं। रूप और रग का जहेरी मैं कहा था भटका हूँ—अपने से दूर। अपनी आखों में पा नही सकता। किसकी आखो में खोजू, फिर अपना प्रतिरूप।

अ-तार्किक

हवा जो गंदी जगहों से गुजर कर नहीं आए स्वच्छ ही होती है। दिल को दिमाग को ताजगी पहुंचाती है। कोई नहीं देखने की आदत नहीं डाले तो रोशनी भी आंखों को ज्योति नहीं छीनती। धरती सबके लिए होती है जो कोई उस के सीने में दरार नहीं करे या उसकी आंखों पर दीवारों की पट्टी नहीं डाल दे। समय सबको समान रूप से लेता है। ले ले जो आदमी और आदमी के बीच कभी ईश्वर का न्याय नहीं खड़ा हो—और कोई उसकी व्याख्या अपने मन से न करता हो। सब आप ही आप होता रहे—कोई निमित्त या उपादान कारण नहीं हो तो फिर कहीं विकृति या विपर्यय नहीं हो। रोशनी हर जगह हुई रहे। भीतर या बाहर कहां कोई कुहराम भी नहीं हो। युद्ध और शांति का प्रश्न नहीं उठे। बेलग्रेड या काहिरा में जमावा नहीं हो। पंचशील पर चलने वाली बहसें समाप्त हो जाए। जगह जगह लोगों की पसन्द के माफिक भरतनाट्यम् या जॉज या बॉल चलता रहे। क्रिसमस और ईस्टर और होली का रंग कभी फीका नहीं पड़े। रोटी और भात नहीं मिले भी तो लोगबाग मछली और मांस और फल और केक और क्रीम लेकर मस्ती से चलते रहें।

शोषण और दमन और भूख और हल्ला हडताल सब लोगो को बेमाने लगने लगें—ये शब्द तक कोश से निकाल दिए जाएँ।

साफ सुथरे घरो मे रहने वाला—अच्छे कपड़े पहनने वाला आदमी कभी गदा नही हो सकता। (गदगी दृष्टि-दोष है) वसे, गदगी कही हो भी तो, इसलिए कि उसस बीमारियां फैलती है, लोग नाहक परेशान हो जाते हैं—उसका इलाज सामूहिक या कामराजी पैमाने पर कराया जाय, अविलम्ब। क्योकि जैसे भी हो, मरने से आदमी का जीना कही ज्यादा जरूरी है। (क्या मालूम कौन आखिर कौन निकल जाये।)

और एक बात और है अर्थनियत्रण के युग मे फिजूल खर्च बंद किया जाय। आखिर कफन की भी क्या जरूरत है आदमी जब भूखे और नगे मर जाँय।

बात बातो का जवाब नही होती—सवाल हो सकती है। जैसे आदमी आदमी के लिए आज सबसे बड़ा सवाल है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि सिर्फ सवाल होता है—जवाब कुछ भी नही। और सारा का सारा जीवन-समय सवाल मे ही चलता है।

अभी कल का वाकया—सवाल है—(या कोई बहुत मामूली बात—जैसा समझ लें)—अपने कमरे के जंगले पर बैठे बैठे—जङ्गल बिल्कुल नंगा है—बाहर गली मे देखता था—कभी कभी उपर भी कटे आसमान पर। (वहां से कटा आसमान ही नजर आ सकता है।) दो बच्चे, पता नही कबसे वहां बैठे खेल रहे थे। सहसा झगड़े पड़े। उठकर खड़े हो गये। उनके चेहरो पर तल्खी आगई। तब तक एक की मां ने बुलाया—फिर दूसरे को। और वे भागते चले गये—जैसे भागने को कब से तयार हो।

फिर बिल्कुल सयोग की हूँ बात—वहाँ एक गौरय्या आ गई। उसके पीछे एक और आई। दोनो काफी चहकती थी। कोई विग्रह-विच्छेद कही नजर नही आता था। मैं उनका फुदकना भटकना देख रहा था (मस्तिष्क एकदम निद्वन्द्व था।) फिर जाने कैसे, महानगर का ख़याल हो आया। ख़यालों का ताँता लग गया। चीन के अणु विस्फोट का—

ख्रुश्चेव के पतन का—नेहरू की मौत और कैनेडी की हत्या का और जाने कैसे-कैसे, कितने-कितने सवालों ने धावा बोल दिया था। उनके जाल से निकलने में समय लग गया। फिर देखा तो गैरयो का पता नहो था। और मैं चेतना को समेट कर पुन अपने कमरे में कैद हो गया था।

सिनेमा जाने की बात थो। अभी कपड़े बदलकर बाहर निकलना हो चाहता था, कि राशन का खयाल आ गया। बहुत लम्बी क्यू पड़ जाती है। और दिन-दिन भर खड़े रह जाने पर भी व्रत पूरा नहीं होता—एकादशी की नौबत आ जाती है।
करने को एम ए पास किया है। और लोग थोड़ा बहुत जानने भी लगे हैं। फिर भी यह हाल कि ठेला और रिक्शा चलाने वाले लोगों के कंधे से कंधे जमाकर—पीछे से कोना रगड़ते हुए दिन-दिन भर खड़े रहना पड़ता है।

बात बिल्कुल अखरती नहो, जो वहां सारा देश साथ होता। मगर मैंने बहुत बहुत खोजा—वहां कभी किसी सेठ-साहूकार या कारों में चलने वाले बाबू या मच-चढ़ बोलने वाले नेता के दर्शन नहो हुए हैं। (मुमकिन है ये लोग चावल चीनी और आटा नहो खाते हों—बचत को सरकारी अपील पर अमल कर अंडा और कैक और बिस्कुट और क्रीम पर रह कर जाते हों।)

फिर बात आगे नहो बढ़तो। कोई रचना

चेतना पर लीक खींच देती है और मैं जहाँ का
तहाँ फिर कटे कटे खड़ा रह जाता हूँ।

सुराज

[प्रधान मन्त्री के नाम एक खुली चिट्ठी]

नहीं, हम न्याय का नाम अब कभी नहीं लेंगे। (विरोध अन्याय की भाषा है।) यहाँ जुल्म औ' सितम कहाँ होता है। गम की छाया नहीं है। कोई दुखी–फटेहाल नहीं है। कहीं आग नहीं लगती। न किसी की दीवार ढाही जाती। हक बिना माँगे मिल जाता है।

वो जमाना नहीं रहा—जब आदमी आदमी का दुश्मन था—खून पीता रहता था। रावण सीता को उठाकर ले गया था। दुःशासन ने द्रौपदी का चीर हरण किया था। लंका में आग लग गई थी। वीरान कुरुक्षेत्र पड़ गया था। आज किसी की माँ कहीं कैकयी नहीं होती। [illegible] दुर्योधन नहीं होता। कहीं कुन्ती नहीं होती—कोई कर्ण नहीं होता। भीष्म और द्रोण आत्महत्या कर चुके हैं। नमक हावी होकर [illegible] भीता।

धरती हर जगह धरती है। रहती है। [illegible] है। सबके ऊपर आसमान का साया है।

गंगाजल सबके लिए है। सबको काशी में मरने की छूट है। अंधेरे और दमन और शोषण—सब दफन हो गये हैं। (हम कितने भाग्यशाली हैं।) सबके लिए पर्दा है—घर है। सभी राज करते हैं। कहीं भूख कोई जान नहीं लेती हर मुरदे को कफन मिल जाता है।

कल फिर

[लुमुम्बा की हत्या की खबर पढ़कर]

आज दिन
किसी बदनसीब बाप के हृदय-सा टूटा हुआ
बिलकुल चुप है ।
सूरज किसी शरीफ मुजरिम सा
पश्चात्ताप की आग में जल रहा है ।
रात में अचानक फेंककर उठी सियारिन सी
काम काज की आवाजें
एक आतंक खड़ा कर चुकी हैं ।
खामोश बेबसी के जड़ कानों से
मेरे अस्तित्व का प्रश्न
पहरुए के ठनकने-सा सहसा टकरा गया है ।
मेरे अहित की आशंका से
स्वप्न में पैदा हो गई मेरी बीवी को काठ मार गया है ।
मेरे बच्चे
कुत्तों की गुर्राहट से चौंक उठे खरगोश के बच्चों की तरह
नींद में ही कांप उठे हैं ।
और मेरा मैं
जिबह हुये बकरे-सा तड़प रहा है ।
क्या करूं ?
खड़ा खड़ा हूँ उसके आगे

अब कोई राह नहीं — और न यहाँ से कोई
वापसी है।
जब न बेवा की बेनूर उमर-सी
यह रात
सामने से हटती नहीं है।
मुझे सुबह का बेहद इन्तज़ार है।
मगर वह सुबह नहीं होगी।
मुझे गोली मार दी जायेगी
और मेरा खून
मुझ पर कफ़न देने के लिए
फिर कोई सुबह मोल लायेगा।

के लिए भी पैसे नहीं रहे। माथे दर्द से झुके हुए हैं। साहूकार हाल चाल पूछने के लिए दरवाजे पर खड़ा है।

मैंने कल फिर एक सपना देखा मेरे दरवाजे पर भीड़ लगी है। मुझे हथकड़ियाँ पहना कर बेरहमी से बाहर खींचा जा रहा है। और मेरी माँ पछाड़ खाकर चौखटे पर गिरी पड़ी है।

किनारा

और यहाँ एक नदी आकर समाप्त हो जाती है मगर कोई संगम नहीं होता। पर्वत देखते रहते हैं और कितनी कितनी उपत्यकायें यूं ही नंगी पड़ी रहती हैं। उल्कापात होता है और रात की खामोशी में कोई फर्क नहीं पड़ता।

इच्छायें बेपनाह हुई रहती हैं। औरत का जिस्म बेभाव बिकता रहता है मर्दों की भीड़ में। अब सिर्फ सोना और चांदी और क्रीम और बिस्कुट का होता है।

दिन रोज की तरह आता है और मायूस लौट जाता है। सवेरे सवेरे रेंगती हुई आकृतियां शाम होते होते कोई गुफा खोज लेती हैं। मगर वे गुफायें भी उन्हें शरण नहीं दे पातीं, कि खुद ही फटी हुई रहती हैं। (उनके लिए सूर्य का अर्थ उल्टा तथा होता है।)

फिर इस किनारा बड़ा दफन हो जाता है, कि रात और दिन में फर्क नहीं रहता जो अक्सर जम की जड़ों में रहता है वो नदियों में दफन जाता है। आदमी [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] खूबसूरत जा उनके दरम्यान कोई जाल न पड़ा हो। ([illegible]

मे भी हिरन और मोर होते है।)

मुझे कभी-कभी उगते सूर्य से डूबता हुआ सूर्य ज्यादा हमदर्द लगता है। हर वक्त ऐसा नही होता कि अँधेरे की सूरत मे किसी जल्लाद की सूरत दिखायी पड़ती है। न्यायालयो के इतिहास मे सिर्फ तारीखे बदलती है नाटक सब ही चलता रहता है। (वे परियाँ होती है जिनकी कहानियाँ अच्छी लगती है।)

मैं डर जाता हूँ जो कभी अन्दर की खामोशी एक अस्पष्ट मगर खौफनाक आवाज मे बदल जाती है। बन्द हुई आग घरघराहट मे सुनती हूँ तो कतार-की कतार रेंगती हुई चीटियाँ नजर आती है। यह कोई साँप होता है जो घसीटा जाता रहता है और जिसकी साँस वे चाट गयी रहती हैं। (खामोशी का अर्थ हर वक्त खामोशी नही होता।)

जुगमन्दिर तायल

धूप-स्नान

एकान्त
शीत-धूप में जन सोया है
वस्त्र उतार
और जन में आकाश
और पहाड़

एक पक्षी जगाने को उसे छूता है
फिर सहम
वापिस लौट जाता है

शब्दहीन, शीतल हवा
हल्के हाथों के स्पर्श से
सिहरा
आगे बढ़ जाती है

एक कौआ कांव कांव करता है
और शरमा कर
चुप हो जाता है

बाँस की दीवार में
कोई एक
देखता है रूप
आँख बन्द कर लेता है।

सूरज सब देखता है

सूरज सब देखता है
नीली खिडकी से ।

हरी मखमल का एक बडा गलीचा
जिसमें पीली बुंदियां हैं
एक बडा गलीचा पीली मखमल का
जिसमें हरी बुंदियां हैं
हर ओर गलीचे ही गलीचे
पीले और हरे
इधर उधर, आगे और आगे
शीतल चाँदी की गोट लगी है
चारों ओर ।

गलीचों के पार
धूप में चमकता विशाल दर्पण ।

बीच बीच में
ढीले कपडे पहिन खडे पहरेदार
खबरदार
कोई हाथ लगाकर गन्दा करे नहीं ।

अहा !
ये गलीचे तो जिन्दा भी हैं

कोई शिकार धीरे से छू देता है
और इनमें सिहरन दौड़ पड़ती है।

कभी सूरज
नीचे उतर आता है किनारा तक।

शिरीष की गन्ध

शहर के बीच फूला है शिरीष का पेड़ बहती
है गन्धभरी नदिया।

सपाट चेहरों की भीड़ गुजर जाती है बगानें की
बदबू छोड़ ट्रक कार बस में जिन्दगी लड़ती है
नथुनों में डीजल की गन्ध भर हाथ टकराते हैं
जोश भर बार-बार, अट्टहासों की गूंज [illegible]
जाती है। कोलाहल है बहुत—संस्कृति के नारे
संगीत की धुन बना की तुम [illegible]
उठते हैं कविताओं के स्वर। [illegible]
शिरीष की गन्ध नथुनों [illegible] मस्त
हो। लगातार झड़ते हैं फूल हँसते हैं फूल
कोमल, गन्धभरे।

शहर के बीच फूला है शिरीष का
पेड़ ।

सेतु

कभी खिला होता है एक गुलाब
और उड़ती होती है एक मधुमक्खी
हवा की एक तरंग मैं
दोनों को मिलाता हूँ।

बंद कमरे की किसी खिड़की पर
बैठा होता है उदास
कहीं एक आदमी। और
विजन में भटकती होती है
एक शिरीष गंध
दोनों से निस्संग मैं
दोनों को मिलाता हूँ।

आकाश में घुमड़ा होता है
किसी बादल में कहीं एक अर्थ
धरती पर भीड़ में
भटकता होता है कहीं एक शब्द
अनिर्वाचित का एक रंग मैं
दोनों को मिलाता हूँ।

पहचान जाओगे। तुम्हारे हाथ घुटनों से नीचे लटक रहे हैं। घुटनों में पैर उग आये हैं। आँखें गरदन में लटक गई हैं और दाँत तुम्हारी आँत चबाते हैं।

फिर हुआ यह कि मैं असलियत से घबरा गया और कविता में पलायन कर गया।

अस्पष्ट, उलझा हुआ और इस पर भी पारदर्शी लहरों में झलकते वार वार झलकते और वार वार घुलते पुखराज से चमकीली मछलियाँ और जान लिए लहर-लहर पीछे दौड़ता-हाँफता बेचैन मैं।

अस्तित्व

(रचना के बाद)

एक प्रकाश मेरे चारों ओर फैला है एक गंध मुझे सब ओर से घेरती है दूर चमकता है एक पुराना-सूरज हाथ भर के फैलाव में हँसता है एक छोटा फूल एक शब्द मुझे सबसे जोड़ता है ।

यह नहीं कि सिर्फ आकाश में हूँ । आकाश मैं हूँ और उसे बनाता भी हूँ गंध मैं हूँ और उसे मादकता भी मैं ही देता हूँ ।

यह नहीं कि सूरज सिर्फ दूर चमकता है किरनें मुझ तक भी आती हैं मेरे रक्त को उष्ण करती हैं मेरी आत्मा को प्रकाश देती हैं । और फूल भला उसे मैं कैसे भूल सकता हूँ क्योंकि उसकी हँसी के लिये ही तो लिखता हूँ ।

सो आकाश में हूँ गंध मैं हूँ सूरज और फूल मैं हूँ और इनसे ज्यादा भी मैं हूँ ।

जिन्दगी

मौत कहाँ नहीं है ?
बिजली के तारों पर झूलती है मौत
ट्रकों में गुर्राती दौड़ती है मौत। लोहे
की पटरियों पर चिंघाड़ती है मौत
कहाँ नहीं है मौत ?
कूड़े बीच मानो गन्दे गड्ढे में छुपी
है कमिस्ट की शीशियों में मौत
मास हँसी हँसती है, चमकती कार में
गद्दा हर वठ मौत सफर करती है
नहीं है कहाँ मौत ?
मौत बिजली के स्विचों में इन्तजार
करती है। मौत पाँचवीं मंजिल की
खिड़की से झाँकती है। मौत नाल
फायर ब्रिगेड की घंटी बजाती है।
है कहाँ नहीं मौत ?
और जिन्दगी
इन सबकी उपेक्षा करती इन सब
पर हँसती इन सबके बीच भागती
रहती है जिन्दगी।

लावा

[छात्र आंदोलन के संदर्भ में]

कितने दिनों से गरम लावा धरती की भीतरी दरारों में
भटक रहा है।
इन दिनों लावे की एक परत बाहर फूट आई है और
उसे रास्ता देने को सड़क खाली हो गई है बाजारों ने
आँख बंद कर ली है सीमेंट की दीवारों ने जगह छोड़
दी है लोहे के खम्भे काँप उठे हैं लावे का कर्कश
शोर सुनकर संगीत रुक गया है पारदर्शी शीशे दरक
गये हैं रंगीन शब्दों से भरे पोस्टर उतर गये हैं
गलियाँ अजीब कर्कश नारों से भर गई हैं।

वे लोग ऊँची गद्देदार कुर्सियों पर बैठते हैं और कांच
की खिड़कियों से सारी दुनिया देखते हैं। उन्होंने कह दिया
है कि यह महज कानून और व्यवस्था की समस्या है
लाठी के चन्द मजबूत हाथ आँसू गैस के थोड़े से गोले
नाटे की नलियों से निकली शीशे की चन्द गोलियाँ सब
ठीक कर देंगी और उन्होंने अपनी खिड़कियों के मोटे
परदे गिरा लिये हैं।

इस बीच लावे की आग बढ़ती जा रही है, वृक्ष और
फूल पत्तों से भरे फव्वारे संगीत और साहित्य के
प्रसारण केन्द्र आग में सुलग रहे हैं।
उन्हें इन सब की शायद चिन्ता नहीं है। फव्वारे वे फिर से

देना लगे, संगीत और फूलों के बिना काम चला लेंगे
वे किसी को भी ज़रूरी चीज़ बिल्कुल नहीं है
और नावें की आग थोड़ी देर में अपने आप बुझ
जायगी।
पर कल क्या होगा? लावा तो अभी और भी है जो
धरती की भीतरी दरारों में भटक रहा है या कि बाहर
आने को कसमसा रहा है। धरती की परतें कमज़ोर
हो गई हैं, अगर वे कल फट गईं तो क्या होगा?

कैक्टस-कथा

[मानवता के सन्दर्भ में]

शहर से बाहर पहाड़ी के एक ढलान पर एक कैक्टस पता नहीं कब उग आई था। हम कभी कभी महत्वपूर्ण कर्तव्यों से अवकाश मिलने पर उधर घूमने जाते थे। उस कैक्टस पर भी कभी-कभी हमारी दृष्टि पड़ी थी— जब हमारी आंखें इधर उधर घूम सौंदर्य पीती होती थी वह आंखों की राह में अटक जाती थी। हमने उसे सदैव उपेक्षणीय समझा था—कांटों भरी एक व्यर्थ झाड़ी अनुपयोगी अर्थहीन। वहां अनेक सुन्दर वृक्ष थे और कितने ही कोमल फूल थे उनके बीच उसकी हस्ती ही क्या थी जो हम उसे महत्व देते। हां हमने कभी-कभी उसमें फूल भी देखे थे। वे फूल हमें पसन्द नहीं आये थे।

वह कैक्टस कुछ अजीब थी। बावजूद हमारी सब उपेक्षाओं के वह बढ़ती रही दिनों दिन भारी और लम्बी होती रही उसके फूल भी बढ़ते रहे पता नहीं कौन उसे पानी देता था हमने तो कभी दिया नहीं। हमें ताज्जुब था कि हमारी उपेक्षाओं ने उसे सुखा क्यों नहीं दिया उसमें फूल आने बन्द क्यों नहीं हुये। फिर हमने उधर ध्यान देना ही छोड़ दिया हमारे पास अपने बहुत महत्वपूर्ण कार्य थे और अवकाश के लिये

सुन्दर वृक्ष तथा कोमल फूल थे ।

एक दिन किसी ने कहा था कि
वह कैक्टस सूखने लगा है । यह
समाचार महत्वपूर्ण नहीं था ।

लेकिन हुआ यह कि एक बड़े आदमी ने (जिसके प्रति हमारे दिलों में बहुत जगह थी और जिसकी पसन्द-नापसन्द का हम बहुत ध्यान रखते थे । उस गमले दालान से उठवा अपने कमरे में लगा लिया और उस पर बहुत कुछ खर्च भी किया । हमने उसके महत्व को तुरत पहचाना और बार बार उसे देखने गये, उसके रोग पर चिंता प्रकट की और उस बड़े आदमी की तारीफ की कि वह इतना कदरदान हो रहा था ।

अब वह कैक्टस सूख कर मर गई है । वह आदमी भारी प्रयत्नों के बावजूद उसे बचा नहीं सका । हम इस चिंता में हैं कि अब हमारा रुख उसके प्रति कैसा होना चाहिये, उसकी ज्यादा तारीफ करी हमारे कोमल फूल और सुन्दर वृक्षों के लिये नुकसानदायक तो नहीं होगी ।

युद्ध के बाद का शरद

आकाश इन दिनों बहुत स्वच्छ हो गया है, मुझे आकाश की ओर देखते डर लगता है। धरती पर इन दिनों बहुत फूल खिल गये हैं मुझे फूलों की बात करते सकोच होता है। कमरे मेरे तमाम मधुमक्खियों के गुंजन से भरे गये हैं मेरे कानों में कुछ और भयानक आवाज गूँजती है।

नीले आकाश में चील बहुत-बहुत ऊपर उड़ती हैं मैं हवाई हमले के सॉयरन की प्रतीक्षा करने लगता हूँ। धूप में घूमने को इन दिनों बहुत मन होता है मुझे दूब भरे मैदानों की जगह खाइयाँ याद आती हैं। वर्षा-धुली चट्टानें शिलायें धूप में चमकती हैं मुझे मोम टैंकों का भ्रम होने लगता है। जंगली नालों के पुलों नीचे बहते दर्पण से स्वच्छ पानी में प्रतिबिम्ब देखने को बहुत मन करता है स्याह पड़े खून की धारायें प्रतिबिम्ब तोड़ देती हैं।

रात भर इन दिनों हर सिंगार झरता है बारूद की गंध मेरे रन्ध्रों से निकल नहीं पाई है। चांद की रोशनी बुरी लगती है अंधेरे में रोशनी जलाते हाथ हिचक जाते हैं। रात में अब तारे नहीं देखता

हैं।

युद्ध फिनलान चला गया है पर नहीं युद्ध एक बार आकर कभी वापस नहीं जाता है।

विजय के बाद

विजय का मुकुट मेरे सिर पर चमकता है
माँ। एक बार युद्ध जीत मैं आया हूँ
मुझे अपनी गोदी मे छुपालो।

गुनाह के कुंजों मे बारूद के गोले सुलगाये
बच्चो की किलकारियों को विस्फोट के धमाके से दबाया
हर एक को शक की निगाहो से देखा मैंने
सत्य को सिर्फ अपने साथ साथ समझा
घृणा को सबसे बड़ा आदर्श माना
अस्तित्व की सार्थकता रक्तरंजित तलवार मे समझी, मैंने
जिससे मैं परिचित नहीं था
जिसकी शक्ल नहीं देखी थी कभी
उसे अपना शत्रु समझा प्रहार किया
(राष्ट्रहित यही कहता था)

गर्म खून से चिकने बने रास्तों से गुजरता
मानव अस्थियों से उठे सेतु पार करता
निर्जन बस्तियों के सन्नाटे मे जयनाद सुनता
माँ। मैं युद्ध जीत तुम्हारे पास आया हूँ
मुझे अपनी गोदी में छुपालो
केसर क्यारियों में सुरंग बिछाने वाले पहले हाथ
मेरे नहीं थे

चीड़वन को मेरे टैंक की कानी सख्त जंजीर ने
पहले नहीं रौंदा था
बर्फ के सफेद स्फटिक फर्श पर
आदमखोर जानवरों के पंजों की छाप
मेरे पंजों की छाप नहीं थी
पर कुछ लोग केवल युद्ध की भाषा समझते हैं
(यह कैसी विवशता है—मैं क्या करूं माँ)
और युद्ध भूमि पर
किसी शब्द का कोई अर्थ नहीं रहता
गहरी घाटियों में गूँजती
सिर्फ एक दर्दनाक चीत्कार रह जाती है
(यह कैसी विडम्बना है)
माँ! एक और युद्ध हार
(युद्ध में दोनों ही पक्ष हारते हैं)
मैं तुम्हारे पास आया हूँ
मुझे अपनी गोद में छुपा लो।



अजित पुष्कल

देश

सिर पर ओढ़े बर्फ
पैरों में समुद्र
पहाड़ सी कठोर नग्न छाती
बाँहें पसार
जैसे ईसा टंगा हो सलीब पर।
इसके जेहन में रंगे लोग
काला लबादा पहन
मेरी रीढ़ पर
यात्राएँ करते हैं
फिर भी—
मैं सारे देश को
मुट्ठी में नहीं
हृदय में रखता हूँ।

अक्षर अवशेष और आयाम

हम नवानुदित मानवता अनुष्टुप के
अमर हैं भाव भरे
मौन से हटकर बोलते हैं
क्योंकि हम नये मूल्य
नये मान अमर हैं
समय की मसि के
ईप्सित चित्र हैं।

हमारे नियता मर चुके
सब साक्षी हैं
वे मानसिक कुण्ठाओं के जन्मदाता
अपराधी थे
आज का युग उन्हें ठिगना दिखाता है।

अब हम धनधनाहट सुनते हैं
दिशाओं की
पृथ्वी के पृष्ठों पर
उभरने लगे हैं
क्योंकि हम अमर हैं
सत्य के धरातल को रटते हैं
मूल्य जो सत्य से जुड़ते हैं।

अभिव्यक्ति शब्दों मे
शब्द लय में
लय मुझ मे

छत के तने छिपकलियां पर्दें
आंगन में लड़
बरामदे में टूटी चरमराय
बनफ्शी कपड़ा पोत टूट
ना पर द, ।। चिड़िया टग्न ।
समय जितना वक्त ।स्वतान है आज
जो निर्जन अन्दर में
बीमरा का घेर
भुज को दीवारों पर खड़ा है ।
ध्रु वरती छोटा
आसमान नगा है
पागलों का सिर फुटौवन
बनाम दगा है ।
यहाँ अपनी हो पीड़ा पनपती है
किसी की अगुलियां जख्मी हैं
किसी का सिर अटका है
फिर भी मालूम नहीं
कहाँ किसकी दवा है ।
बस वेदना की राहत है
बस सब आहत हैं ।
गिद्ध सूंघ रहे हैं
अस्पताल का छप्पर
उनकी दार्शनिक आंखें
मृत्यु के इंतजार में
लाशों का सुख बांट रही हैं
पंज सहला रहे हैं
घावों में स्वाद पनप रहा है

ईश्वर

ईश्वर के नाम पर
सा म्प्र है दिक् और काल
सारा का सारा वर्तमान।
उस अखंड तत्व का
एक एक टुकड़ा जबड़ों में दाबे
चौराहों पर लड़ते हैं लोग
कुत्तों की तरह उत्तेजित
भूकते हैं धर्म युद्ध का आह्वान।
ईश्वर अगर युद्ध है
तो मैं नहीं मानता
नहीं मानता इस
नि स्मरण मात्र से
आंतरिक प्रकाश पुंज
बन जाय खून का तालाब
और मुरदों की गंध से
फटने लगे ब्रह्मांड
स्वार्थ और सत्ता के लिए
ईश्वर अगर युद्ध है
तो मैं नहीं मानता
नहीं मानता
इस शव साधना को नहीं मानता।
मुझे उन आत्मग्लानियों से घृणा है

जिन्होंने बिना सोचे
ईश्वर के अस्तित्व को
युद्ध धर्म सत्ता और
व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए
विभाजित किया
उसके स्वरूप का शव
अंधेरे में
आकाश से पृथ्वी तक
टांग दिया।
भोगा न थोड़ा थोड़ा।
उसे बांट लिया
जैसा चाहा
वैसा प्रयोग किया।

एक शाम

तट पर सन्नाटा
हाथ में खाली वंशी
डूबते सूर्य की रोशनी
गटक कर मछलियाँ
समा गई धार में
अजीब है आज
सामने सब घटने दिया

जो अनुभिया नहीं
आहत मन जलाया चाहती है ।
इसने हृदय को तृप्त कर
धरती रखी है।
सूर्य का अवतार
देने के लिए
रचा रखी है ।

(२)

आग है वह
रात का पिछला पहर है
मैं अकेला
जैसे निरा नव दीप्त तारा
लुप्त होने से बचा सा
नील नभ के एक कोने
बैठ गया हूं ?
कौन अपनी
नील आभा पी गया हूं।
पेड़ सारे मौन
चिड़ियां छिपी बैठी
सूनी सड़कों का नगर
मेरी दृष्टि का अट्टहास
इन पर नहीं सुभता
न इनका रंग
मेरे नयन चढ़ता।
एक कोने—

जो अनुभूतियाँ मेरी
आज भी मन जलाती रहती हैं।
इसने हृदय को तृप्त कर
धरती रची है।
सूर्य को अवतार
देने के लिए
रज्ञा रची है।

(२)

आज है वह
रात का पिछला पहर है
मैं अकेला
जस निरा नव दीप्त तारा
लुप्त होने से बचा सा
नील नभ के एक कोने
ठठ गया हूँ ?
काँच अपनी
नील आभा पी गया हूँ।
पेड़ सारे मौन
चिड़ियाँ छिपी बठी
सूनी सड़कों का नगर
मेरी दृष्टि का अट्टहास
इन पर नहीं सुभता
न इनका रंग
मेरे नयन चढ़ता।
एक कोने—

कोठों से उतर कर
जा रहे कुछ लोग
अपनी गली में भागते चुपचाप
काली शिला पर
रोशनी की रूह बिखरी जा रही है।
भोगरा का खुल गया विद्रोह
यहीं मेरा मन
काले श्याम पट पर
युग बोध का
दुर्बोध पोस्टर लिख रहा है।
और कब तक
कोठे खुले खुलते रहेंगे
और कब तक
बिल्लियाँ सोने न देंगी
और कब तक
पालतू कुत्ता
तिल्ले पर रहेगा
और कब तक
खोज में अपनी
मुझे जगना पड़ेगा।
और कब तक
काली शिला पर
रागनी मूर्छित रहेगी
यहीं गत इतिहास के वे तथ्य
मान पत्रों से तने
छिटके पड़े हैं
और मेरे सिर भारी हैं

फैला डाली हैं अँगुलियाँ
पर मौन भरसक तोड़ दूंगा
घन घनाक्षर।

स्वागत पट पलट गया ।
पंडाल के नीचे
चीखता है सन्नाटा
साजों का दर्द
समा गया खोखले ड्रम में ।
चादर के दो छोर
पीड़ा से कांप रहे हैं
पालतू जानवर नदी पार कर
बस्तियाँ ढूँढ़ रहे हैं
काले हरे लाल
बिछौने मंडप में
खून के छींटे उभर रहे हैं
कुहासे की भाप
पंडाल तक बढ़ने को उठ रही है
मैदानों में कुत्ते के मन में
भूँकने की ललक उठ रही है ।
लगता है
एक और नये उत्सव के लिए
अपने को
दो दिन तक और छलूँ ।

सोफे पर सोता है ।
सुबह शाम वे भिनभिनाते हैं
उसके बीमार घोड़े के जबड़े के पास
जिसके सामने टर सा अन्न होता है
जो बहुतों के पास नहीं होता ।
उसे शहर की शिराओं में
विशाल इस्पाती वमद को सूंघते हुए
दौड़ना पड़ता है कुत्ते सा
कभी अकेले कभी हजारों के साथ
कभी नींद कभी जग कर कटती है रात
मरने के लिए इतना ही बहुत है
इसीलिए लगता है—
कितना घृणित है किसी को सूर्य कहना
फिर उसी को आंच में दहना
मुर्दे बन रहना ।
यद्यपि जानता हूं
बड़ा ही कठिन है
मुर्दों को जगाना
धरती राख से ऊपर उठा
शुद्ध हवा में सुलाना
कफनों को शो केस में सजाना
चौराहों पर टांगना
पोस्टरों में आंकना ।
क्योंकि मंत्रसिद्ध कर्मकांडियों
और रक्त शोषक जोंकों की साजिश ने
उन्हें गहर उतार
पत दर पर्त से ढका है

एक भव्य नगर रचा ह
जहां उनके आत्मज दिनविनात हैं
मन्त्रसिद्धि के सफल प्रयास मे
कुंडलिनी डुबन, सास रोके

सून उगलन हैं
अपने को घूँटते ह
मुर्दे नहा मसो । वनते हैं
चूहा सा तान उत्पन्न कर
दीमो के मुहान म विठा देते हैं
सपनपाता पांव म
अलग अलग सूसन देते हैं ।
कितना आत्मदाह
कितनी वस मस म
उजलता है मनका का जीवन
पथर के खोखए सजाने के ईर्द-गिर्द
गिरवा धरा जीवन

हम जीते हैं मृत्यु भय लिये ।
अराजकता टल जाती है स्वयं एवं व्यवस्था में
सचेत हम रहें तो
धारण कर निज रूप
सचेत हो तो शांतिपूर्ण रूपान्तर ।

रूपान्तर दर्पण में हर बार
नये सिरे से अपने से पहचान
अपने से बातचीत बन गयी लोगों से बात
और लोगों में भाषण
बना श्रवन से सम्भाषण
भीड़ में अकेला मन अकेले में अन्दर
असरूप चेहरों की भीड़ एक नीड़ सा मिला
किसी स्वर को झकझोरती भीड़ में
और मौन जगता है प्राण तक
क्षण भर जीना और क्षण भर मरना
कभी बन जाता है सदियों के आर पार
शाश्वत अनहोना कितना सहज है
रूपान्तर सदियों का क्षण में और क्षणों का
वर्षों और सदियों में
एक जिन्दगी का कई जिन्दगियों में
और कई जिन्दगियों का एक जिन्दगी में ।
यान एक सुविधा का माप है
हमारी गति का यान कोई नहीं हम हैं ।

हम हैं जो अस्तित्व का ताप सह देह धर
बन जाते हैं अक्षर मात्र
[illegible] लेते हैं [illegible] बरस जाते हैं ठण्डे मन

मैं तुम्हें क्या दूं

मैं तुम्हे क्या दूं ऐ साथी
अपना क्या है
इस सवहारा के पास
तीन शब्द चुरा लाया हू
बैंकों के सेफ वाल्ट से
'लडो' 'और लडो'
एक एक शब्द बडा कीमती है
इनकी आवाज बन्द करने के लिए
जड दिये जाते हैं
लाखा रुपये के ताले—काले काले
इनसे दो बात
बड़ी दुलभ है ऐ साथी

मैं तुम्हें क्या दूं ऐ साथी
मेरी सांस
जो तुम्हें छू रही कपोलो पर
मैं चुरा लाया हू
उन बुर्दाफरोशो की तराजू से
जिनके हाथ
बेच रखी है मैंने यह जिन्दगी
एक एक सांस बडो कीमती है
अब अपनी सांसो से

मुलाकात
बड़ी दुर्लभ है ऐ साथी

मैं तुम्हें क्या दूं ऐ साथी
मेरा हाथ
जो तुम्हारे हाथ तक पहुंच गया है
मैं चुरा लाया हूं
उन रातों से जहां बांधकर रखे हैं
तुम्हारे स्पर्श से
अहसास हुआ ये मेरे अपने हैं
मेरे ही सपने हैं
एक एक स्पर्श बड़ा कीमती है
सहारा देना थोड़ा सहारा देना
इन हाथों की सौगात
बड़ी दुर्लभ है ऐ साथी

एक पुराने महल मे

मैं बैठा हुआ हूँ
इस पुराने महल में
जिसके दर्प पर छाये हुए हैं
मकड़ियों के जाले
मेरा गर्व भरता है
जर्जरित प्लास्टर के
झरने की आहट से
(शायद ऊपर से कोई जेट
निकल गया है
अट्टहास करता)
मुझे लगता है जैसे मैं
क्षुद्र तिलचट्टे सा रेंग गया हूँ
दुबक कर
और तिलचट्टा के दुबक बैठ जाने से
झरना नहीं रुकता है
जर्जरित प्लास्टर का ।

मैं बैठा हुआ हूँ
इस पुराने महल में
जिसमें हर दिन एक ईंट सा गलकर
खिसक जाता है सिसकता
अतीत का गर्व गुम्बद

मौत बन कर टूट पड़ना चाहता है
मेरे सिर पर
वर्तमान दरारों से झाँकती हुई
उल्लू सन्नाटे के पुरातन दरारों पर
काँप-काँप उठता है
सारा अस्तित्व
(शायद कहीं डायनामाइट से
उड़ा दी गई है
धाराएँ रोकनेवाली चट्टान)
मुझे लगता है जैसे मेरी धड़कनें
दूर में समायी हुई
एक सूरज को तलाशती हैं आशा से
और सूरज की तपन से
सिसकना नहीं रुकता है
गलती हुई ईंटों का

मैं बैठा हुआ हूँ
इस पुराने मकान में
एक साँप फुफकारता है छाती पर
मणि धारे
मेरी विरासत है किसी विरासत पे
और प्राण सौंपत में
दवा जानते थे
ज़हर उतारने का मंत्र
एक खूँद गया है साँप
और मैं देखता हूँ
हवेली [illegible] होता हुआ
मैं पटपटाता हूँ

कोई है कोई है
मेरे गले से क्यो नही निकलती है
कोई भी आवाज
मै डरता हू नारो से
(शायद कही सड़कों से
निकल गया है
नारो का जलूस)
और नाग की आंखो का जादू
टूटता ही नही है
कोरे छटपटाने से

मैं बैठा हुआ हूं
इस पुराने महल में
झरना नही रुकता है जर्जरित प्लास्टर का
सिसकना नही रुकता है गलती हुई ईंटो का
टूटता नही है जादू नाग की आखों का
क्या मैं ढह जाने दू इस महल को
अपने आप
क्या मैं दफना दू जीवित ही अपने आप
या उठ बैठूं
और बाहर निकल पड़ू
चीखूं और चिल्लाऊं
बारूदी सुरग बिछाकर लगा दू
एक आग
जो मैरे अन्दर
सुलग रही है न जाने कब से

विलम पीढ़ी का गीत

मेरी कोई पीढ़ी नहीं जो बुज़ुर्गो
कोई पीढ़ी नहीं
वह मैं नहीं जिसको पुकारते हैं आप
शायद कहीं हो
शायद कहीं

मंच पर दृश्य परिवर्तन के बीच कहीं
जो अंधकार आता है
जिसका कोई दर्शक नहीं कोई श्रोता नहीं
उसका अनजाना अनदेखा
अस्तित्व
आप नहीं जानते नहीं पहचानते
धृष्टता क्षमा करें

क्षण और क्षण के बीच ठहरा हुआ समय
जिसे कोई नहीं भोगता
किस वेदना में जीता है क्या प्रतीक्षा
करता है
वह गत आगतातीत
अनानुभूत सत्य
आप नहीं जानते नहीं पहचानते
धृष्टता क्षमा करें

लिखते-लिखते जब टूट जाती है एक पंक्ति
सब दूसरी से पहले
जो रिक्तता छूट जाती है स्वाभाविकतया
वह अभिव्यक्ति शून्यता
की तिक्तता
आप नहीं जानते नहीं पहचानते
धृष्टता क्षमा करें

धृष्टता क्षमा करें
आप मुझे जकड़ना क्यों चाहते हैं
पतवार की तरह पकड़ना क्यों चाहते हैं
आपकी यह नौका
लहरों के शीश पर
नहीं
रेत के खोसे पर रखी है ओ बुजुर्गो

मेरी कोई पीढ़ी नहीं ओ बुजुर्गो
कोई पीढ़ी नहीं
पीढ़ियां होती इन्सानों की, पशुओं की
नहीं कभी जिन्सों की

जिन्सें जो फुटपाथों के खोमचों पर
मक्खियों के चूसने से
पड़ी हुई हैं
निर्लिप्त और निरपेक्ष
जिन्सें जो शो केसों में नियॉनलाइट के
प्रकाश की चकाचौंध हँसी

बरसात के अनगिनत बूंदों के मारे
कांपते हैं भयभीत तारे
न रक्षा करता है
न वज्र बन
वक्ष पर गिरता है
जिसके साये में न मौत है न जिन्दगी

परम्परा
एक शिला-लेख धरती के सीने पर आ गिरा
भाषा कोई नहीं जानता जिसमें वह लिखा है
अजायबघर में रखा है
मिना की खिमनियों में
दफ्तरों की फायलों में
डूब गयी हैं सदियां
शेष केवल कौतूहल है
जिनके न पीछे कल है और न आगे कल है

भव सागर पार उतरने की प्रार्थनाएं
तथास्तु
पूरी हो गयी हैं
अब कोई नहीं और आगे पार तरने को
लहरों की भुजाएं
चट्टान बन गयी हैं
निर्वाण पा गयी हैं सारी आत्माएं
और क्या कामनाएं हैं आ बुजुर्गो

मेरी कोई पीढ़ी नहीं आ बुजुर्गो
कोई पीढ़ी नहीं

रेगिस्तान के जगह बदलते ढूहों में
दबी पड़ी सभ्यताएँ
पड़ी होंगी पड़ी रहें
ढूह जगह बदलते हैं तो नया रूप
कोई नया नहीं होता
दिखायी दे जाती है कहीं कोई दूब
मृगतृष्णा है
जिजीविषा
किसी सम्भावना की एक प्रतीक्षा
मैं वह प्रतीक्षा हूँ
केवल प्रतीक्षा
अविराम अविराम अविराम

रात पहले पहर मे

मार खाये हुए [illegible] रग रग
लाल लाल नीली नीली [illegible] फिर काली
प[illegible] गयी है । जगमग जगमग

नियोन लाइट का [illegible] चेहरा
उतर गया है सुनकर मानो कोई गाली ।
[illegible]तर गया है मनहूस [illegible] ।

उतार लिया [illegible] हुए स्याह रग का ओवरकोट
[illegible] हुए [illegible] एक वृ[illegible]
चौरा[illegible] पर । जैसे [illegible]

शहर का रनिंग के सहारे [illegible]
[illegible], निर[illegible] और नि[illegible]
[illegible] और [illegible], [illegible] और [illegible]

चौर[illegible] के [illegible] पर हर [illegible]
[illegible] जा[illegible] हुआ
[illegible] हो गये हैं [illegible]

[illegible] सनसना से [illegible] है
[illegible] हवाएं
[illegible] बातें

उन षड्यन्त्रकारियों की मीठी बोलती बातें
आज के दिन जो रक्षा की रंगीन ध्वजाएं
फहराय रख रखे, कल के लिए चिंतित हैं।

जिनका न कल था न आज है
न कल होगा, वे टेलिग्राफ खम्भे
खड़े हुए हैं यहां तक, वहां-वहां

कन्धों पर सारे तार सारा गान साज है
ओर छोर पर टेलीप्रिंटर और [illegible]
गढ़ रहे हैं झूठ के खूबसूरत [illegible]

आलमारी के खानों सी कई मंजिली इमारत
माल जिसमें भर दिया जाता है ठूंस-ठांस कर
राजदण्डधारी करते रहते हैं निगरानी,

वक्त आते ही चल पड़ता है यह माल
ग्राहक के पास अपने आप, अपनी चाल
लौट पाया तो लौट आता है फिर अपने खाने पर ।

बेघर और बेदर राह की रेलिंग के सहारे
मैं खड़ा हूं समय ठहरा है सितारों में
ठहरा रहेगा कब तक अपने स्वभाव के विपरीत ।

बाहर हर तरफ ठण्डे हैं स्पर्श सारे
अन्दर धधकते हैं अहसास के क्रुद्ध गीत
जलना है जिंदा रहना इन गलियारों में

मांस के जलने की तीखी गंध दमघोटू यातनाएं
कुहरा बनी छायी है मौन का पत्थर है छाती पर ।
मैं सहमा कितना बड़ा हो चला हूं इस थानी पर

आसमान [illegible] महसूस और बाहें दिशाएं
मेरे मु[illegible] [illegible] और गांवों पर,
धरती सिमट [illegible] सिकुड़ी मेरे पांवों पर

जी चाहता है एक ठोकर से उड़ा दूँ यह पत्थर
फूँक दूँ   उफन जायें ये सिन्धु सारे,
मुट्ठी में पास कर ब्रह्माण्ड गढ़ दूँ एक घर   एक घर।

एक और दिन

एक और दिन
सपाट मौत के मुँह में
हाथ डाल कर
तोड़ लिया है
सफेद दाँत
मेरी गुलाबी हथेली पर
रख दिया है समय ने
शायद फिर मजाक
कर लिया है मुझसे
जिस पर वह खुद ही हँस पड़ा है
मैं नहीं हँस सका।

मेरी काली आँखें
जिन किरणों से नीली भूरी
हो गयी हैं निरभ्र
उन्हें मैं
देखता हूँ विस्मय से
फैली हथेली पर गहरी रेखाएँ
नीली नीली सड़कें सी
मुझे बुलाती हैं
अभी अभी
मैं नहीं जानता कि
रेखाओं का अर्थ

फिर भी शायद आदत से
विवश सा
मैं चल पड़ता हूँ
पाँव रखने लगता हूँ भविष्य में

जब मैं ठिठक जाता हूँ
खिड़की से झाँकते हुए
फूल को
या मुंडेर पर बैठे हुए
कबूतरों को
देखने की लालसा से
एक शीतल सुगंधित हिलोर से
भर जाता है निर्जीव सूना सा अस्तित्व
एक और गीयर बदल जाता हूँ
कहीं मेरे अन्दर
हाथ स्टीयरिंग पर
महसूस करते हैं
धड़कनें
धक् धक् धक् धक्
पैट्रोल और फूलों की
मिश्रित सुगंध से
अभिभूत गति अभिभूत
मैं राह के पेड़ों
और खम्भों को
छूता हुआ चलता हूँ
पोस्टरों और साइनबोर्डों को

पढ़ता हुआ बढ़ता हूं
और मुझे
लगता है
हर चीज के होठों पर
एक अस्तुना प्रकम्पन है
अनगुंजा
और उन सबके लिए
मेरे अन्दर कुछ शब्द हैं
अनसृजित
जिनको मुझे अपनी
प्राणप्रिया के लिए ही
रचना है सजोना है

हर वस्तु जिसे मैं
देखता हूं छूता हूं
सुनता हूं चखता हूं
श्वासों में भरता हूं
एक शक्ति दे जाती है
अनायास
समस्त आकारातीत
स्पर्शातीत स्वरातीत
स्वादातीत गन्धातीत
और मैं विह्वल हो उठता हूं
उसे दे देने को
किसी नव आकार में
नवल स्पर्श में
नवीन स्वाद नये स्वर में

और कुछ नहीं तो तरंगित सी

, किसी नयी :

मैं पत्थर को देता हूं ।

नगर खड़े हो जाते हैं

मरुस्थल में

इस्पात में रोपी हुई धड़कनें

ढालने लगती हैं

नये रूप नये रंग

मिट्टी उछाल देता हूं

ठहर जाती है व' नभ में

नक्षत्रगण बनकर

रेखाएं खींच देता हूं

शब्द साँस लेने लगते हैं

कालजयी अक्षय

अपनी उपलब्धियों पर

खुश होता हूं बच्चों सा

किन्तु तभी

असन्तुष्ट हो उठता हूं

उनमें अपने को न पाकर

सर्वांग और सम्पूर्ण

मैं बड़ा हो उठता हूं

बहुत बड़ा

मेरा सिर आसमान और पर

उठ जाता है वहां तक

जहां तक रिक्त है

शून्य है

अपनी महानता से पराजित

मैं देखता हू दिन को लहू-लुहान

साँझ की बाहो में

मैं उद्विग्न मन लेट जाता हू

अपनी आयु की शय्या पर

कल फिर होगा तो देखू गा

क्या कोई अर्थ है ?

यहाँ बाहों का अर्थ है राहें
और उनके छोर पर
हथेलियाँ हैं
नोमैन्स लैण्ड
यहाँ अनिर्णित ज्वालाओं में
तुम्हें आवाहन करते हुए
मेरे डरने का
क्या कोई अर्थ है

यहाँ छुने हुए ओंठ
कोरे कागजों से फँसे हैं
मैले हो रहे हैं
धूल की पर्तों से
अनिश्चित शर्तों से
यहाँ उत्तराधिकार में प्राप्त
प्रभुसत्ता शून्य
अर्थवत्ता की मुहर लगाते हुए
मेरे सिहरने का
क्या कोई अर्थ है

यहाँ हर आत्मीय का अर्थ है
सर्प दंशों का आतंक

हर काम्य बीज का फल है
अनचाहा अपना ही शत्रु
वहां आदिम उवरता मे
हिमशिखरो से गिरते हुए
मेर विष झरने का
क्या कोई अथ है

जहां हर स्पश स पहले ह
कट्रासप्टिव का स्पर्श।
और हर आनन्द को, ।
उसके जन्मदाता हाथ-
फेंक देते हैं कूडा।
वहां रोमांटिक जगत
एक विपरीत गति बिम्ब मे
प्रेत सा
मेरे विचरने का
क्या कोई अर्थ ह

।

आत्म-निर्वासन

[१]

एक और दिन फेंक गया है
कोई मेरे सामने
मुझे दीन-हीन भिखारी समझ कर
खोटे सिक्के को सार्थकता दूं भी
तो कैसे दूं
यहां अस्पताल है
नो हार्न प्लीज
बाहर लोग चल रहे हैं खामोश
उस वायरस से भयभीत
जो अखबार की खबर की तरह
फैल जाता है अनायास
शहर भर में
लोग भीड़ क्यों हैं
जुलूस क्यों नहीं बन पाते
मैं रोग शैया से उठ कर
बाहर पहुंचने को कसमसाता हूं
कायर कण्ठ में घुमड़ने वाले
क्रान्तिकारी नारे की तरह

अच्छा मैरे रोग से चिंतित हैं
सार अधिकारी
नगर में हैं सफाई का अभियान
लोगो के जमा होने पर हैं पाबंदी
सिर्फ पूजा और कीर्तन खुले हैं
अखबार रोज छापते हैं
रोग से बचने की हिदायतें
कहो अश्रु गैस-लाठी से
वे ला रहे हैं
लोगों को होश मे
वे मैरे पास आये हैं
कहते हैं मैं मर कर स्वर्ग नही
जाता हू क्यो कर
देशभक्ति की खातिर

उनके देशभक्ति की बात बघारते ही
मुझको लगता है
वे अभी छुरा भोंक देंगे
मैरे पलक मारते ही
मैरी मा पडी है मरणासन्न
यही किसी वार्ड मे
वे किसी धनीशाह को खूब खेली-खायी
सूरत रखेन ले आते हैं
कहते हैं ले पूज यह तेरी माता है

वे हर जेल को कहते हैं अस्पताल
और हर अस्पताल को ।

और हर घर पर वे स्वयं बैठे हैं
काले मणिधर
और अपने ही घर में
मेरा अपना निर्वासन

[२]

मनहूस सूरज आँखें मीचकर
बदबूदार कर देता है
मेरी हथेली पर
एक नगर गधाने लग जाता है
छितरा सा बिखर कर
मैं शायद बीमार हूँ
अकेला हूँ
डाक्टर खुद अपना इलाज कर रहे हैं
झगड़ रहे हैं अपने डायग्नोसिस पर
मुझे ज़िन्दा ही मुर्दाघर में छोड़ कर
मरे हुए लोगों के बीच
मैं सोचता हूँ
इनमें से कितने लोग जीवित हैं
क्या वे जाग सकते हैं
मेरी आवाज की ठोकर खाकर
परिवेश है एक अस्पताल
पाक साफ
मक्क हैं सो खून
नर्स सदा मुसकराती ही रहती है
और मरीज सदा बोलता है

स्वस्थ देह के लिए गेह के लिए
मैं जानता हूं
मौत सबको खा लेती है एक दिन
मैं उससे छीनता हूं एक एक मीठा क्षण
चूसता हूं चिविंग गम
वथा एक और गम
तुम मुझे दे सकते हो
फूलों का गुलदस्ता
और फलों का रस लेकर
प्यार के आंसू बहाने वाले
ओ आध्यात्मिक
मेरी आंखों के सामने से हट जाओ
मैं एक एक्स-रे दे सकता हूं
पारदर्शी शब्द
जिससे देह दर्शन नंगा हो सकता है
शल्याघात की क्षमतावालो यहां आओ
वे जिनके हाथ नहीं कांपते
इस्पाती औजारों को पकड़कर
वे जो समझते हैं इन यन्त्रों को
अपनी इच्छाओं का दास मात्र
मैं केवल उनकी परीक्षा हूं
प्रतीक्षा हूं
मैं जानता हूं शल्याघात के क्षण में
मेरा भविष्य है और नहीं भी है
मैं अधीर हूं अंतिम निर्णय के लिए

[३]

जब रातें गर्म होती हैं और सुबह ठंडी
जब दिन तपता है और रक्त जमा देती है रात,
जब एक मौसम से होने लगता है अकस्मात संक्रमण
किसी अन्य मौसम में तब कोई वायरस अभिघात
घात में आ बैठता है हर गली मोड़ पर।
मेरी बीमारी है, हां, मेरी अपनी ही दुर्बलता
प्रतिरोध शक्ति की क्षीणता।
गिद्ध लाशें ही खोजते हैं।
जब ज्वर रेंगने लगता है कीड़ों की तरह जिस्म पर,
तब संत्रास की विस्मय से मैं समझ पाता हूँ
कौन सा है वह मौसम जो अब आ रहा है।
(सुना है कि मौसमों की पुरानी पहचान
अब दिन कब्रों में पनाह पा रही है
पेड़-पौधों-फूल-पत्तों के आंगन में
नंगी बैठी हुई)
मेरे मित्र नग्नता पर कविताएं लिख रहे हैं
भोग रही इच्छाएं, सब स्त्री मित्रों-पुत्रियों के
द्वारों पर भारत सुरक्षा का ताला जड़ दिया गया है
मार्क्सवादी आते थे सारे दिन लिया है तुम्हारे
मैं मानसिक मैथुन में विश्वास नहीं करता।
शायद इसीलिए मेरा पौरुष रहता है उत्तेजित।
तुम ने एण्टीबायोटिक्स के नाम रट रखे हैं डाक्टर
लेकिन मित्र, इन सबसे इम्यूनिटी पा चुका है वायरस।
क्या होगा उपचार? अभी फिर नया शोध करो।
मुझे अगर बचा लो किसी दिन डाक्टर,

प्रस्तुत हू   सार्थक तो हो मेरी निरर्थकता।

निरर्थकता मे जी रहे ह कुत्ते दुम हिलाते, गुर्राते
अपने स्वामियो के चरणो पर, श्रौर हर राहगीर को
वफादारी से डरात-धमकात गुर्रात श्रौर भौकत
मैं चौका हुआ, शायद दिग्भ्रमित, एक राहगीर हू।
मैं अपने अन्दर देखता हू एक नक्शा श्रौर मे
खोज रहा हू गतव्य सडको की दुर्गम वर्ग पहेली मे।

मुझे जो राह रुचती है उसको रोके क्यो खडे हैं
सोने के चिकने पवत खेद कि मै रोमाटिक नही हू।

मेरा माथा गर्म ह श्रौर शरीर कापता ह ज्वर से,
मैं एक निमम वम के पाजिटिव निगेटिव तारो के
छोर लिये ठहरा हू बढ़त हुए समय की प्रतीक्षा में।

भूख

तपते हुए आसमानी खालीपन के नीचे
एक पथरीली फसल। कल और अकाल के
बीच एक भूख सा जाती है अधकच्ची भीड़।
कागजों का पेट भर गया है   मैं बहुत भूखा हूं।
मेरे आगे खड़ी मिस मोना नाखूनों को देखती हैं,
और पीछे शुन्य मिस्टर मौन शुभ सूनी समझते हैं।
परिवहन की प्रतीक्षा है सवारों को। भूखी चीखें
कहीं नहीं पहुंचती। ईश्वर को इजाजत है
केवल आकाशवाणी के एंटेना से भोग की।
नपुंसकता के झण्डे लहराते हैं गौरव से
सार्वजनिक भवनों पर।
        बोनस तुम्हें पता है कि
प्रेम किस चिड़िया का नाम है   मैंने बहुत-बहुत-बहुत
दिनों से नहीं देखा   क्या तुमने देखा है? क्या देखा है?
अभी, रहने दो, रहने दो   प्रश्न नहीं दोहराऊंगा।
मेरे पास भी हर प्रश्न का उत्तर नहीं है, किसी के पास है?
जब कोई बात नहीं करता तब अहसास नंगे पांव
नुकीली सीढ़ियों पर दौड़ पड़ते हैं। अब कुछ से
कहे नहीं जाते हैं ये ठेकेदारों के सुल्तान
अधबने, [illegible] रास्ते। इस महानगर में
[illegible] जेबों में [illegible] और फिर कोई
[illegible] पर हाथ भी [illegible] नहीं रखता है अपने दम पर।

सुना था विचारों के लंब पांव होते हैं ।
सुप्त हो गये हैं क्या पांव आदमी की पूंछ जैसे
मेरे पांव कहां हैं अभी कमर के नीचे कुछ शेष है ।

प्रोमेथ्यूस जरा माचिस की डिब्बी तो देना
जिसे तुम चुरा कर लाये थे शायद किसी टेबिल से
मैं जरा सिगरेट जला लूं और सोच लूं, हां सोच लूं
डरते हो कि कहीं आग न लगा दूं इस कागज के
नगर में। सुबह अखबार क्या कहेंगे ? मैं बता दूं
कोई मिथक फिर नहीं जनमता दुबारा नहीं जनमता ।
माचिस की तीलियों से कोई पहिया नहीं बनता
इस ईस्पाती समय का । न्योन लाइट की दमक में
हाथों को हाथ नहीं सूझता । वापस लोगे क्या माचिस ?

कभी तुम अंधेरे के अभ्यस्त होकर देखना,
तुम्हारी आंखों से निकलकर एक अनहोन प्रकाश की
किरण चल पड़ेगी तुम्हारे आगे आगे आगे ।
मुझे अंधेरे की भी सार्थकता में आस्था है ।
मैं बहुत भूखा हूं और भूख के पांव बड़े लंबे हैं ।

वियतनाम

मैं अपने ही देश में विदेशी हूँ,
अनधिकृत प्रवेशी हूँ
मनुष्य नहीं, गुरिल्ला हूँ
मैं बैठ गया हूँ एक अँधेरी गुफा में
बना रहा हूँ आदिम अस्त्र कुछ
जोखम भरे शब्द
और कभी कभी छापे मार देता हूँ
आधुनिकतम हथियारों से सुरक्षित
सभ्यता के खेमे पर
लिख देता हूँ अपने लहू से एक कविता
एक चेतावनी यातनागृहों की दीवारों पर
भाड़े के सिपाहियों और
तिलचट्टों से निर्मित
मैं सड़क की हर टेबिल पर
छोड़ आया हूँ हैंडग्रेनेड
और हर मोड़ में कुछ टाइमबम
और हर घर में बना आया हूँ
कारतूसों और बारूद की फैक्टरियाँ
और हर खेत और हर कारखाने में
लोगों को बना रहा हूँ गुरिल्ला
मेरे हाथ में एक कलम एक
टारपीडो है लिखाक

सातव वेडे पर लाद कर सारा इतिहास
मैं डुबो दूगा प्रशा त महासागर में
और सारे अशान्त महासागरो के
किनार जलते हुए
पवतो और जगलो में
फिर मेरा दश जन्मेगा
एक नये गुरिल्ले से
शुरू होगा फिर मेरा अपना इतिहास

रणजीत

पृष्ठभूमि

जर्द है चांद का मायूस चेहरा
रह रह कर सांस उठता है
दमे का मरीज बूढ़ा आसमान।
उधर
अपना गम गलत कर रहे हैं सितारे
विहस्की की तल्ख घूंटों में
और इधर
भूख से कुनमुनाती हुई ओस की दुधमुंही बूंदें
अपने अस्तित्व की भीख मांग रही हैं।

फुटपाथों पर ठिठुर रहा है बेघरबार सन्नाटा
बेरोजगारी से तंग उजाला
रेल की पटरी पर कट कर मर गया है।
अपने कसमसाते हुए प्यार को पगडंडियों के किनारों में
जकड़े
करवटें बदल रही हैं
हिस्टीरिया से पीड़ित झीलें
पहाड़
अपने पौरुष की लाश पर पुराने संस्कारों की बर्फ का
कफन ताने
मातम मना रहे हैं।

अकेला चीख रहा है कुवारी रात का अवैध बच्चा
बादलों की जवान बेटियां
जिस्म की दूकान कर रही है ।
पत्थरों को पूज रही है मासूम कलियां
फूलो को परेड मैदानो मे पंक्तिबद्ध करके
संगीनें भोंकने की दीक्षा दी जा रही है ।
हथकड़ियो से जकड़ी हुई हैं पेड़ो की शाखें
बेलो की सांसो पर पहरा लगा है ।
सुरक्षा अधिनियम मे गिरफ्तार कर लिये गये हैं झरने
आंधियों के आंदोलनो को
मशीन गना से भूना जा रहा है ।
टीयर गैस से आक्रान्त है दिशाओं की आंखें
धरती का एक-एक जोड़
दर्द रहा है
शायद कोई सवेरा
क्षितिज के गर्भ में छटपटा रहा है ।

विष-पुरुष

पास मत आओ मेरे
मुझसे न पूछो बात कोई
मत बढ़ाओ हाथ मेरी ओर तुम सम्पर्क का—
मैं विष-पुरुष हूं।

बहुत संक्रामक हुआ करते हैं नीले जहर के कीड़े
कहीं ऐसा न हो
इस जहर की लहर
तुम्हारी धमनियों के रक्त में भी उमड़ने लग जाय
आग
अन्तर में दबाए हूं जिसे मैं
झपट कर कोई लपट उसकी तुम्हें छू ले
कि वे चिनगारियां जो
युगों से सोयी हुई हैं बन्द सांसों में तुम्हारी
आज फिर जग जायं
इसलिए मुझसे बचो
जो वर्तमान की पर्तों का दर्द ढोकर
जिन्दगी जी लेने की बात सोचने वालो।
आजकल विष बांटता हूं मैं॥

पीले प्रेतो की बस्ती मे

कभी कभी डर सा लगता है
इस पीले प्रेतो की बस्ती में रहते रहते हो
प्रेत न मैं खुद ही हो जाऊ
कही न उस ले पू जी का अजगर मुझको भी
प्रेतो के हाथो में भी बिक जाऊ
उन सब जिन्दा इन्सानो की तरह
जिन्होने पहले स्वर में
मानवता की विजय-पताका फहराई थी
किन्तु जिन्हे फुसला फुसला कर
चादी के इस चक्रव्यूह में लाकर
इन प्रेतो ने
आज प्रेत ही बना लिया है

या तो अपने पर मुझको विश्वास बहुत है, लेकिन
आसपास की स्थितियो के प्रभाव को भी
झुठलाना मुश्किल है
ठीक है—
इन्सानियत के प्यार की यह वृत्ति कुछ हलकी नही है
कभी कभी पर
नोटा के कागज भी कही अधिक भारी हो जाया करते हैं
मनके गहरे विश्वासों को
तन की भूख हिला देती है

रोटी की छोटी सी कीमत भी कभी कभी
इन बड़े-बड़े आदर्शों को रेहन रखकर
मिट्टी में गर्व मिला देती है।

यदि ऐसा हो कभी
कि इससे पूंजी का अजगर मुझ को भी
प्रेतों के छाया में भी बिक जाऊं
मानवीय क्षमता
समता के गीत छोड़कर
प्रेतों का ही यशोगान करने लग जाऊं
तो—
जो घुनना स बच हुए जिन्दा इन्सानो !
मुझको मेरे वे गीत सुनाना
जो मैंने कल प्रेतों को इन्सान बनाने को लिखे थे
प्रेतों में खोया ईमान जगाने को लिखे थे
एक ओर बिकते आदम पर
एक ओर ढलती छाया पर
उन गीतों की शक्ति तौलना
हो सकता है
उनकी गर्म सांस फिर मेरे
मुर्दा मन में प्राण फूंक दे
थिरकों की अंगुलियां उनकी
चांदी व पत्तों में दबे पड़े
इन्सानी बीजों को अंकुर दे जाएं
फिर से शायद
भटका साथी दल तुम्हारा
राह पकड़ ले

और तुम्हारा परचम लेकर
लड़न को प्रस्तुत हो जाये—
कभी कभी डर सा लगता है।

माध्यम

मैं माध्यम हूँ।
मैं उन सबकी भटकती हुई आत्माओं का माध्यम हूँ
जो अधूरे और अतृप्त मर गये
मेरे कंठ में उनके स्वर हैं
जिन्होंने सारी जिन्दगी निःशब्द गुजार दी
मेरी कलम में उनकी आग है
जो अपनी आग अपने दिलों में दबाए हुए ही चले गये
मेरे गीतों में उनका विद्रोह है
जिनकी गर्दनें उठने से पहले ही झुका दी गईं
यह मैं नहीं उनकी आत्माएँ बोल रही हैं।

जब मैं बोलने के लिए अपना मुँह खोलता हूँ
कुछ भटकते हुए शब्द मेरे आसपास मँडराने लगते हैं
ये उस अंग्रेज लेखक क्रिस्टोफर कॉडवेल के शब्द हैं
जिसने स्पेन की आजादी की लड़ाई में अपनी जिन्दगी दे
दी थी
ये इंटरनेशनल ब्रिगेड के उन सैकड़ों क्रांतिकारी सैनिकों के
शब्द हैं
जिन्हें भाप बना कर उड़ाने के लिए
नात्सी गेस्टापो के हाथों सौंप दिया गया था।
ये [illegible] के उन हजारों युद्ध-बंदियों के शब्द हैं
जिन्हें जिन्दा दफनाने के लिए

खुद उन्हीं के हाथों से कब्रें खुदवाई गयी थी
आसविट्ज के गन्धचेम्बरों मे घुटी हुई ये लाखो आवाजें
अब खुले आसमान में विचर कर लोगो के कानो तक
पहुचना चाहती हैं ।

मैं माध्यम हू ।
जब मैं लिखने के लिए अपनी कलम उठाता हूँ
एक आग मेरी कलम को घेर कर खड़ी हो जाती है
यह आग अल्जीरिया को उस जवान विद्रोहिणी जमीला
की आग है
अमानुषिक अत्याचारो के बल पर
जिससे वे रद्द अपराध स्वीकार कराए गये
जो उसने कभी नही किये
यह सीक्रेट आर्मी की शिकार उन हजारा अल्जीरियाई
मशालो की आग है
जिनकी जिन्दगियां
फ्रांसीसी साम्राज्यवादियो की नजर मे
बोर्ड पर लिखी हुई संख्याओं से ज्यादा कीमत नही रखती
यह आग चाहती है कि मैं इसे कागजो के पृष्ठो पर
उतारता जाऊ
और कागजों के पृष्ठों से वह लोगो के दिलो तक पहुचती
जाय ।

मैं माध्यम हू
टूटी हुई आवाजो और दबी हुई चिनगारियो का माध्यम ।

जब मैं अपना साज सभालता हू
एक दर्द मेरे आसपास आकर जमने लगता है

यह कांगो के बेताज बादशाह लुमुम्बा का दर्द है
जो मेरे सांस को उदास और आवाज को गमगीन
बना रहा है
यह कांगो की आजादी के उस सिपाही का दर्द है
जिसे निहत्था करके गोली मार दी गयी
और कांगो के जमे हुए खून में एक उबाल भी न आया।

मैं जब अपनी पलक उठाता हूँ
कुछ घायल और बदहवास सपनों को अपने आसपास
मंडराते हुए पाता हूँ
ये तेलंगाना के उस बूढ़े किसान के सपने हैं
जिसने जमीनों पर जोतने वालों का अधिकार चाहा था—
और इसके इनाम में जिसके हाथ पैर काट दिये गये थे
ये उन एक सौ आठ बागी किसानों की पत्नियों के सपने हैं
जिन्होंने अपनी पकती हुई फसलों और जवान होती हुई
बेटियों को
लुटेरे हाथों से बचाने के लिए
बन्दूकें उठा ली थीं
और जिनकी गर्दनें फांसी के तख्तों पर लटका कर तोड़
दी गईं
ये तेलंगाना के उस छोटे से विद्रोही गांव की
सैकड़ों स्त्रियों और बच्चों के सपने हैं
जिसे हिन्दुस्तानी सरकार के बहादुर सिपाहियों ने घेर कर
आग लगा दी थी
ये सपने चाहते हैं
कि मैं इस दुनिया के हर एक इन्सान की पलकों तक
पहुंचा दूं!

मैं माध्यम हूं
बेताब दर्दों और घायल सपनों का माध्यम।
जब मैं सोचना चाहता हूं
एक भयानक पागलपन मेरे दिमाग को चारों ओर से जकड़
लेता है

यह उस अमेरिकी पायलट का पागलपन है
जिसे हिरोशिमा पर एटमबम गिराने का आदेश दिया
गया था
और जो इस भीषण नरमेध का प्रायश्चित
अमेरिकी पागलखानों में कर रहा है
यह पागलपन व्याकुल है
कि मैं इसे दुनिया के हर जंगबाज नेता
और उसके हर वफादार सिपाही के दिमाग तक पहुंचा दूं।

मैं माध्यम हूं
और जब ये शब्द यह आग और ये सपने मेरे आसपास
मंडराते हैं
मैं अपने क्षुद्र से व्यक्तित्व को भूल जाता हूं
और मुझे लगता है कि मैं ही वह अंग्रेज लेखक हूं
अन्जारियाई जमोला हूं
मैं ही रबर की तरह जमी हुई लाशों की आत्मा को
हिलाने की कोशिश करने वाला सुमुम्बा हूं
आग में जिन्दा जलती हुई स्त्रियों और बच्चों की ये
दर्दनाक चीख
मेरे ही भीतर से उठ रही हैं

मैं ही वह पवित्र पागलपन से आक्रांत अमेरिकी पायनेट हूँ
ये सब मेरे ही भीतर जी रहे हैं
मैं माध्यम हूँ ।

फाउस्ट के कन्फ़ेशन

अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए
मैंने अपनी आत्मा को रेहन रखा था
सोचा था
कि जब फिर मेरे पास पर्याप्त शक्तियाँ हो जाएँगी
उसे छुड़ा लूँगा
लेकिन मुझे क्या पता था
कि ज्यों-ज्यों मेरी शक्तियाँ बढ़ती जाएँगी
शैतान का कर्ज़ भी बढ़ता ही जाएगा
और आख़िर जब मैं उसे छुड़वाने लायक हुआ
मेरी आत्मा नीलाम हो चुकी थी।

अपनी मिट्टी के बचाव के लिए
मैंने अपने विद्रोह को सुलाया था
सोचा था
जब मैं फिर लड़ने लायक हो जाऊँगा
उसे जगा लूँगा
लेकिन मुझे क्या मालूम था
कि वह अफ़ीम जो मैंने उसे सुलाने के लिए दी थी
उसके लिए ज़हर साबित होगी
और आख़िर जब मैं लड़ने लायक हुआ
मेरा विद्रोह मर चुका था।

एक।
जिस आपद्धर्म की तरह स्वीकार किया था
उसे जीवन दर्शन बनाने के लिए मजबूर हुआ।।

अब मैं भटक रहा हूं
अपने अहंता हीन अस्तित्व के कंधों पर
अपने असफल विद्रोह की लाश रक्खे हुए
ताकि देख लें मेरे हमसफर
समझ लें
कि जिस तरह समझौता
—एक सामयिक समझौता भी—
विद्रोह की आत्मा को तोड़ देता है।

मॅरेलिन मनरो का अन्तिम पत्र

सुनो,
ओ दुनिया के सबसे सम्पन्न और सबसे सभ्य देश के भद्र
नागरिको,

सुनो !
मैं जो अबतक सिर्फ तुम्हारे एयर-कंडीशण्ड टॉकीजों
के पर्दों
या फिल्मी अखबारों के रंगीन पृष्ठों पर से ही बोलती
रही हूं
मैं जो अब तक ओढे हुए व्यक्तित्व ही तुम्हारे सामने रखती
रही हूं
निर्माताओं निर्देशकों संवाद लेखकों के शब्द ही
तुम्हारे सामने दुहराती रही हूं
आज तुम्हें अपने ही दिल और दिमाग से निकले हुए
अपने ही शब्दों से संबोधित कर रही हूं।

सुनो, अमेरिका के कला मर्मज्ञ फिल्म-निर्माताओ
निर्देशकों आलोचकों और दर्शकों !
तुमने मुझे हमेशा नींद की गोलियां दी हैं !
मेरी चेतना, मेरे विवेक मेरे अहसास को सुलाया है
मेरे नारीत्व मेरे व्यक्तित्व मेरी आत्मा का होश खोना है
और मेरी भूख मेरी प्यास मेरे स्तनों और मेरे नितम्बों
को उभारा है

मेरे होठों के रंग और मेरे बैंक बैलेंस को शोखी दी है—
मेरे शरीर को जगाया है।
इस शरीर का, जिसने अब मुझे पूरी तरह से छीन लिया है
यह शरीर जो अब मेरे व्यक्तित्व का एक अंग नहीं,
उसका दुश्मन बन गया है।
और आज मैं इसे उन्हीं नींद की गोलियों से सुला दूंगी
जिनसे तुमने मेरी आत्मा को सुलाया था।
ओ मेरे अपने देश और दूसरे देश के मेरे प्रशंसको!
मेरे सौंदर्य के ग्राहको! मेरे अभिनय के सराहकों!
मेरी तारीफ में छपी हुई तुम्हारे अखबारों की सतरें
तुम्हारे कलेण्डरों में टंकी हुई मेरे नंगे शरीर की तस्वीरें
मेरे तन पर भरी हुई तुम्हारी आहें
मेरे उभारों पर भिनभिनाती हुई तुम्हारी आँखें
मेरे होठों की ओर फेंके हुए तुम्हारे चुम्बन—
ये सब मेरे आसपास इस तरह मंडरा रहे हैं
जैसे किसी गंदे परनाले के कीचड़ में पड़ी
किसी इन्सान की लाश के पंजर में
घिनौनी मक्खियाँ और कीड़े मंडरा रहे हों
और यह सब मेरे लिए असह्य है।

तुम्हारी इस व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का क्या मतलब है
जिन्हे तुमने व्यक्ति बनने का मौका ही नही दिया।
तुमने मुझे मात्र एक शरीर बनाकर रक्खा।
एक शरीर जो खूबसूरत है जवान है भोग्य है
एक शरीर जो किसी की मा नही बहिन नही बेटी नह
किसी की पत्नी प्रेयसी मित्र कुछ भी नही है
महज एक शरीर —
सैंतीस तईस सैंतीस का एक मॉडल !

मेरी टेबिल पर कपडे के दो खिलौने पड़े हैं
एक बाघ है और एक ममना
कल ही मै इन्हे खरीद कर लाई हू
कितना भयानक कितना खूखार है यह बाघ
और कितना मासूम कितना निरीह है यह ममना !
पता नही क्यो यह विचार मेरा पीछा नही छोड़ रहा है
कि यह ममना मैं ही हू
और यह बाघ ?
—इस मासूम ममने को निगलने वाला यह बाघ ?—
मैं सही शब्द चुनना नही जानती
शायद यह तुम्हारा फिल्म उद्योग है
शायद तुम्हारे बाजार और बैंक हैं
शायद शायद तुम्हारे समाज का यह ढांचा है !

रात उदास है
और खिडकियो पर जमती हुई बर्फ की फुहार में
        किसी रहस्यपूर्ण षडयन्त्र की फुसफुसाहट है
मेरा सिर नीद से भारी हो रहा है

अब मेरे पास सिर्फ एक गोली बची है
आखिरी और छत्तीसवीं गोली।
और इसके बाद मैं गहरी नींद सो जाऊंगी
ऐसी नींद जिससे मुझे कोई न जगा सकेगा।

मैं तुम सब की आभारी हूं, ओ मेरे देशवासियो!
मैंने इस छोटे से जीवन में बहुत कुछ पाया है
पैसा, प्यार, शोहरत, इज्जत सब कुछ
दस लाख डालर का बैंक-बैलेंस बेवरली हिल्स पर एक
शानदार कोठी
दसियों कारें और लाखों लोगों के आकर्षण का केन्द्र
यह शरीर
मैंने अपने जीवन में बहुत कुछ पाया है।
सिर्फ एक छोटी सी इच्छा शेष है
कि कोई बिल्कुल अजनबी व्यक्ति
बिना मेरे सेक्स अपील और शारीरिक उभारों को
अपनी आंखों से टटोले हुए
बिना मेरी सुंदरता और शोहरत से प्रभावित हुए
बिना जाने कि मैं हालीवुड की रानी मनरो हूं
मुझे एक आइसक्रीम खिलाता
या सहज स्नेह से सिर्फ मेरे गाल थपथपा देता।
बस!
अब मैं सो रही हूं!

मेरे आस-पास के लोग

मेरे आसपास बडे सभ्य लोग रहते हैं।
ये जो पानी को तो कई कई बार छानते हैं
पर जहरीली परम्पराओं को आंख मीच कर पी जाते हैं।
रोटी की पवित्रता का तो पूरा ध्यान रखते हैं
पर सिद्धांत जूठे ही खा लेते हैं।
सब्जी तो हमेशा ताजी ही काम में लाते हैं
पर आदर्श बासी ही अपना लेते हैं।
कपडे तो खुद सिलवा कर ही पहनते हैं
पर विचार रेडीमेड ही खरीद लेते हैं।
मकान तो अपना बनवाया हुआ ही पसन्द करते हैं,
पर विश्वास किराये पर लेकर ही काम चला लेते हैं।
फिल्में तो अपनी पसन्द की ही देखते हैं
पर शादी अपने मां बाप की पसन्द से ही कर लेते हैं।
कितने सभ्य हैं मेरे आसपास के लोग॥

एक हिन्दुस्तानी लड़की, अपने मन से

सुन रे मेरे मन।
इतना मत तन
पहले इधर देख
फिर करना मीन मेख
सुन, यह है तेरा पति
इसके सिवा नहीं तेरी गति
इसको कर प्यार
अपने को मार
हिम्मत न हार
फिर कोशिश कर एक बार
आखिर इसी से काम
या करेगी अपने पुरखों का नाम ?

तब इसी से भुकने मे क्या फर्क पड़ता है
सोचले अब तू बस इसकी परिणीता है
यह राम है तेरा तो तू इसको सीता है
पर यह राम हो या न हो, तुझे सीता रहना है
इसका ही होकर रहना है मगर जीता रहना है
भले घर की लडकियो का यही है ढग
जैसे कालो कामरी चढै न दूजो रग ।

ये सपने : ये प्रेत

मुझे घेर कर खड़े हुए हैं मेरे सपने !
क्षण भर के भी लिए चैन की सांस नहीं लेने देते हैं—
दामन पकड़े खड़े हुए हैं मेरे सपने !
मैं इनसे अभिभूत हुस्न के अंगारों पर चल लेता हूँ
मैं इनसे आविष्ट आंधियों-तूफानों में पल लेता हूँ
प्रेतों से ये मेरे सिर पर चढ़े हुए हैं मेरे सपने !
मुझे घेर कर खड़े हुए हैं मेरे सपने !!

सपने — जिनको जन्म दिया था मैंने
दुनिया की ताकी नज़रों से छिपा-बचाकर
पाला था
पोसा था
बड़ा किया था,
अब मुझ से अधिकार मांगते

क्षरा भर के भी लिए चन की सांस नही लेन दत हैं—
दामन पकडे अडे हुए ह मरे सपने !!

कभी-कभी मेरा हारा मन
दुनिया के सार नियमा स समभौता कर
सीधे सादे ढर स जीवन जीन की
बात सोच लता है लकिन
ये अवध जनवादी सपन
सघर्षो के श्रादी सपन
सब समभौते तुडवाते है
श्रौर मुभे हर जोर-जुल्म के
वेइसाफी के खिलाफ ये
बांह उठा कर लडवाते ह—
ऐसे पीछे पडे हुए है मर सपन !
मुभे घेर कर खडे हुए ह म रे सपन !
क्षरा भर के भी लिए चन की सांस नही लन दते हैं—
दामन पकडे अडे हुए है मर सपन !

एक विराट् पवित्रता

ठहरो रहो,
अपनी इन मृणाली बाहों से मुझे घेर कर इसी तरह
ठहरी रहो।
जब तक कि तुम्हारे रोम-रोम से वह अज्ञात सत्य साँसें
ले रहा है
जब तक तुम्हारी आँखों में उसकी नीली गहराइयाँ हैं
तुम्हारे गात उसकी रोशनी से रोशन हैं
तुम्हारे होठों पर उसका स्वाद है
तब तक मुझे घेरे रहो
उस विराट् पवित्रता से मुझे छुए रहो
क्योंकि कुछ ही क्षण बाद
अपने आप तुम्हारा आलिंगन ढीला पड़ जाएगा
और हम दो टकराकर बीच चुके बादलों की तरह
अपने-अपने खण्डित अस्तित्व को देख रहे होंगे
और सोच रहे होंगे
कि क्यों अब हमारी निकटता बिजली नहीं चमकाती
और तब
तुम्हारे चेहरे पर उभरती हुई मुस्कान में कुछ बनावट
नजर आ रही
और मेरे मन में तिरमिराती हुई अभिमान की रेख
तुम्हें अजनबी बनाने लगेगी।
हम फिर स्वयं के छोटे-छोटे घरों में फिर बन्द रह जाएँगे

फिर तुम मेरे लिए किये गये अपने त्यागों का हिसाब
करने लगोगी
और मैं तुम्हारे लिए सुनी हुई प्रताड़नाएं गिनने लगूंगा।
तुम मेरे किसी दोस्त की नकल निकालोगी
और मैं तुम्हारी किसी सहेली का मजाक उड़ाऊंगा।
फिर वही लेन देन
हिसाब किताब
शिकवा-शिकायत
शायद हमारी क्षुद्र आत्माएं
उस विराट् को अधिक देर तक धार नहीं रह सकतीं
इसलिए जब तक तुम्हारे स्पर्श में शिरीष के फूल खिले
हुए हैं,
तुम्हारे केशों में रातरानी की खुशबू है,
तुम्हारी सांसों में इन्सानियत की गर्मी है,
तब तक ठहरी रहो,
अपनी इन मृणाली बांहों से मुझे इसी तरह घेर कर
ठहरी रहो।

बर्फ पिघलने के बाद भी

कैसे फिराते हो तुम मेरे शरीर पर अपनी अंगुलियाँ प्राण ।
कौनसा जादू भरा है इनमें
कि कस-कस जाते हैं
मेरे शरीर के सितार की सारी नसों के तार
थिरक उठता है
मेरी नसों में शताब्दियों से सोया हुआ कोई आदिम
संगीत
समन्दर की अदम्य लहरों की तरह
मंत्रमुग्ध सी तुम्हारी अंगुलियों के इशारों पर
और जाग-जाग उठती हैं
मेरे मन की अथाह गहराइयों में बेहाश
प्रागैतिहासिक युग की हजारों कविताएं ।

कौन सा दर्द, कौनसी आग भरी है तुम्हारी इन
अंगुलियों में प्राण ।
जो सैकड़ों रेगिस्तानों की व्याकुल प्यास
मेरे रोम-रोम में रच जाती है
कि जब मेरे अस्तित्व की जड़ [illegible]
चरम-सुख के तरल [illegible] में पुलक भरती है
और मैं तुम्हारी [illegible] को [illegible] देती हुई [illegible] में
अपना गरदन [illegible] हुए
एक [illegible] हुई लता की तरह सो जाती हूँ

[illegible]

तब भी मुझे लगता है
कि अनलांघी घाटियों और पहाड़ों की क्वांरी बर्फ
पर पड़े
पहले पद चिन्हों की तरह
सदियों तक मौन सहती रहूंगी अपने वक्ष पर
सजो कर रक्खूंगी
तुम्हारी अंगुलियों से लिखे इन घावों को
बर्फ के पिघल जाने के बाद भी।

संवेदनाओं के क्षितिज

तुम ठीक कहती हो प्राण ।
सचमुच मैं तुम्हें पूरे दिल से प्यार नही करता
पर मैं पूरा दिल कहां से लाऊं ?
मैं तुम्हें कैसे बताऊं
कि जब मेरे दिल का एक हिस्सा
तुम्हारे प्यार में खोया हुआ होता है
उसका दूसरा हिस्सा
एक शत्रुतापूर्ण तूफानी समुद्र में
अपनी मंजिल की ओर बढ़ते जा रहे
एक छोटे से जहाज के साथ मंडरा रहा होता है
और वह जहाज है
साम्राज्यवाद के समुद्र मे नही डूबने का संकल्प लिए
हुए क्यूबा।

और जब मैं तुम्हें अपनी गोद में लिटाये हुए
तुम्हारे केशों में अपनी अंगुलियां फिरा रहा होता हूं
मेरे विचार हाथों में बन्दूक लिए
वियतनाम के घने जंगलों मे घूम रहे होते हैं
और अमेरिकी हवाई जहाजों से बरसाये जा रहे
जहर ले बमों की किरचें
मेरे चेहरे को लहू लुहान कर जाती हैं।
मैं तुम्हें पूरे दिल से प्यार कैसे करूं ?

कि जब मेरे कंधे पर सिर रख कर तुम सो रही होती हो
और कहती हो
कि इस तरह तुम्हारे कंधे पर सिर रख कर सोना मुझे इतना अच्छा लगता है
कि चाहती हूं कि जन्म जन्मान्तर तक इसी तरह पडी रहूं
तभी मेरी आंखो मे सुदूर अतीत का एक दृश्य कौंध जाता है
हावर्ड फास्ट के उस आदि-विद्रोही स्पार्टकस का दृश्य
और छह हजार गुलामो की लाशें मेरे दिमाग में बिछ जाती है
और तुम्हारे मांसल गालो को छूती हुई मेरी अंगुलियो में
राइफल के बोल्ट का एक कठोर स्पर्श जागने लगता है ।

तुम ठीक कहती हो
सचमुच मैं तुम्हे कभी पूरे दिल से प्यार नही कर पाता
लेकिन प्यार ही क्यो
कोई खुशी, कोई गम भी तो मैं पूरे दिल से नही मना पाता
मेरी हर खुशी पर सैंकडो अवसादों के साये है
और मेरे हर अवसाद की कारा में सैंकड़ो आशाओ की खिड़कियां

कि जिस दिन मैं 'राहुल' के प्रकाशन की खुशी मना रहा था
साम्राज्यवाद का जुआ तोड़ फेंकने वाले दो पडोसी देशों की सेनाएं
हिमालय की बर्फ को इन्सानी खून से रंग रही थीं ।

कि अपनी नौकरी छूटने की ख़बर की उदासी
मैंने नाज़िम हिकमत की कविता 'तुम्हारे हाथ और यह
झूठ' से काटी थी
और कई महीनों की बेकारी और भटकन के बाद
जब मुझे फिर काम मिला
अल्जीरिया के स्वतंत्रता आंदोलन को
सीक्रेट आर्मी ऑर्गेनाइज़ेशन की हत्याएं आतंकित कर
रही थीं।

और उस दिवाली की रात तुम्हें याद है ना ?
जब हम मोमबत्तियों की कतारों में छिपे हुए बच्चों की
तरह खुश हो-हो कर
फुलझड़ियाँ और पटाखे छोड़ रहे थे
मैं एकाएक उदास हो उठा था
क्योंकि एक पटाखे की आवाज़ मुझे उन गोलियों की
आवाज़ के करीब ले गयी
जिनसे बगदाद की सड़कों पर मेरे अरमानों के सीने दागे
गये थे।

तुम ठीक कहती हो कि मैं
लेकिन मैं क्या करूं ?
मेरे ज्ञान ने मेरी संवेदनाओं के क्षितिज कितने फैला
दिये हैं
कि दुनिया के कोने-कोने में मैं अपने दोस्तों और दुश्मनों
को देख रहा हूँ
मेरे दोस्त जो मेरे दुश्मनों से एक निरापद लड़ाई में जूझ
रहे हैं

और पेरिस के किसी चौराहे पर फहरता हुआ मजनूमों
का एक बुलन्द इरादा
जजीबार मे उठी हुई मुट्ठियो का एक जुलूस
न्यूयाक में र गभेद के खिलाफ कडकता हुआ
एक नारा
मुझ इस तरह रोमांचित कर जाता है
जिस तरह महीनो की जुदाई के बाद तुम्हारा पहला
आलिंगन ।
और टोकियो मे एक मजबूरन टूटी हुई हड़ताल
लियोपोल्डविल मे एक गिरफ्तारी
सिगापुर मे झुकी हुई गर्दनो का एक वापस लिया
हुआ आदोलन
मेरे दिल पर अवसाद का इतना बोझ रख जाता है
कि मैं घटो तक किसी से बात भी नही कर पाता ।

इसका मैं क्या करूं ?

प्रकृति में प्रतिबिम्बित किसी परोक्ष सत्ता में मेरा विश्वास
नहीं
पर मेरे भीतर बसा हुआ यह प्रकृति का अंश
इसका मैं क्या करूं ?

हिलोरें लेने लगता है मेरे भीतर का पानी
समन्दर की अदम्य लहरों के कोलाहल में
उमड़-उमड़ उठती है मेरे रक्त में बसी हुई आग
कुहरीले सवेरों में पूरब से निकलते हुए सूरज के
साथ-साथ।
और जब भी देखता हूं
चांदनी रातों में नदी के चमकते हुए कछार
लोट-पोट हो जाना चाहती है उनमें
मेरे भीतर की पृथ्वी।
उमग-उमग आता है मेरे अन्तस् का आकाश
सितम्बर की शामों के रंग-बिरंगे बादल चित्रों में
विचरते हुए।
जाग उठती हैं मेरे भीतर सोयी हुई खुशबुएं
वासन्ती हवाओं की मादक सुगंधों के संगीत में।
और जब देखता हूं
लोगों के एक समूह को एक साथ आन्दोलित होते हुए
एक कतार में कवायद करते हुए

एक लय में कुदालें चलाते हुए
और एक स्वर में भुजाएं उठाते हुए
तो मचल मचल उठता है मेरा दिल
उनमें घुल-मिल जाने के लिए
जैसे बहुत देर से बिछुड़ा हुआ कोई बच्चा
अपनी मां को देख कर
उसकी गोद में जाने को मचलता है।

इस संसार में अभिव्यक्त किसी अज्ञात चेतना में मेरा
विश्वास नहीं
पर इस संसार के जन जन की आग के साथ
मैं जो कोई गहरी आंतरिक एकता महसूस करता हूं
उसका मैं क्या करूं?
मेरे भीतर की इस आग और इस तरलता का
अपनी आंखों के आकाश और अपने हृदय की मनुष्यता
का
इनका मैं क्या करूं?

इतिहास का दर्द

काश, यह दुनिया कुछ कम उलझन-भरी होती ।
प्यार का विरोध सिर्फ ग़लत परम्पराएं ही करतीं या
पैसा ही

सच की दुश्मनी सिर्फ झूठ से ही होती
उजाले के हथियारों से हथियार भिड़ाए हुए
सिर्फ अंधेरा ही खड़ा होता
और इन्क़लाब की खिलाफ़त सिर्फ प्रतिक्रिया ही करती ।

लेकिन यहां तो प्यार के खिलाफ़ प्यार खड़ा है
एक तरह के प्यार के खिलाफ़ दूसरी तरह का प्यार
और परम्परा और पैसा उसके पक्ष में भी है और विपक्ष
में भी ।
उजाले के सामने उजाला तना हुआ है
गुलाबी उजाले के सामने लाल उजाला
और काले अंधेरे का विरोध नीला अंधेरा कर रहा है ।
सच के खिलाफ़ सिर्फ झूठ ही नहीं
एक दूसरा सच भी है
और इन्क़लाब के मुक़ाबले में सिर्फ प्रतिक्रिया ही नहीं
एक दूसरी तरह का इन्क़लाब भी खड़ा है ।

काश यह दुनिया कुछ कम जटिल होती
और हमें एक इन्क़लाब के लिए दूसरे इन्क़लाब की

एक प्यार के लिए दूसरे प्यार की
और एक सच के लिए दूसरे सच की
मुख़ालिफ़त के दर्दनाक कर्त्तव्य का बोझ
न उठाना पड़ता।

प्रतिश्रुति का गीत

मैं आज के युग में जी रहा हूं
और आज की
—एकदम आज की—संक्रांति झेल रहा हूं
पर मैं असंगतियों और विद्रूपताओं के
विक्षेप और आत्महनन के गीत कैसे गाऊं ?
एक कि मेरे आसपास सब कुछ अंधेरा ही नहीं है

तमाम दूरियों के बावजूद मेरे माता पिता
अभी मेरे लिये बेगाने नहीं हुए हैं
अपने घर में मैं अभी आउटसाइडर नहीं हुआ हूं
मेरी पत्नी अभी मेरे लिये अजनबी नहीं बनी है
मेरे दोस्त अभी मेरी भाषा समझते हैं ।

यह नहीं कि मुझे कभी अकेलापन नहीं सताता
पर अधिकतर मैं अब भी चाहता हूं
अपने अकेलेपन का
अपने साथियों के कंधों पर टांक सकता हूं
झोले में पड़ी एक पुस्तक की तरह
अपनी प्रिया की आंखों में विलीन सकता हूं
स्वच्छ सरोवर में डुबकियां लगाते हुए ।
एक जलपक्षी की तरह

प्रह्लाद की तरह सिर उठाते हुए सौन्दर्य को भी देखता
हूं।

और उस संगति को भी
जो इन असंगतियों की काई फाड़ कर झांक जाती है।
मैं अपने चारो ओर फैली हुई संक्रांति से नही,
उसके बीच से अपने नक्श उभारती हुई क्रांति से
प्रतिश्रुत हूं।
अस्तित्व की बेहूदगियों के रेगिस्तान का नही
उसके नीचे बहती हुई सार्थकता की उस अन्तःसलिला का
कवि हू
जो पाताल-तोड़ कुएं के रूप मे फूट पड़ना चाहती है।
मैं उसकी मुक्ति के लिये संकल्पित हू।